"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

श्रीकैलासविद्यालोकस्य सप्ततितमः (७०) सोपानः

वेदान्तरत्नाकर
(सानुवाद)

प्रणेता :

श्री षष्ठकैलासपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर

विद्यावाचस्पति श्रीमत्स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज

भाषानुवादकः एवं व्याख्याकारः

श्री अष्टमकैलासपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर

श्रीमत्स्वामी चैतन्य गिरी जी (शास्त्री जी) महाराज

भाषानुवादसंस्कर्ता एवं निर्देशक :

श्री दशमकैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आचार्य महामण्डलेश्वर

श्रीमत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज

आंग्लानुवादक एवं सम्पादक :

स्वर्ण लाल तुली

"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

सम्पादकीय

दिशन्तु शं मे गुरुपादपांसवः

वेदान्तरत्नाकर कैलास ब्रह्मविद्यापीठ के षष्ठपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर विद्यावाचस्पति श्री मत्स्वामी विष्णुदेवानन्द गिरि जी महाराज की अमर कृति है। इस की विस्तृत सानुवाद व्याख्या श्री अष्टम कैलासपीठाधीश्वर आचार्य महामण्डलेश्वर श्री मत्स्वामी चैतन्य गिरि जी (शास्त्री जी) महाराज ने करके इसे प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ की चौथी आवृत्ति वि. सं. २०४२ (सन् १९८५) में प्रकाशित हुई। इन दोनों गुरुजनों के निर्वाण रजत महोत्सव प्रसंग पर **श्रद्धासुमनाञ्जलि** के अन्तर्गत **वेदान्तरत्नाकर** का श्रीदशम कैलासपीठाधीश्वर परमादर्श आ. म. मं श्री मत्स्वामी विद्यानन्द गिरि जी महाराज ने विस्तृत भाषानुवाद का संक्षेप संस्कार करके इसके आंग्लानुवाद सहित इसे प्रकाशित करवाया। महाराज जी ने यह घोषणा भी की कि जो

वेदान्तरत्नाकर को एक वर्ष के अन्दर कंठस्थ करके सुना देगा उस को **श्रद्धासुमनाञ्जलि** पुस्तक इस संकल्प के लेते ही बिना मूल्य के प्राप्त हो जायगी। कई भक्तों ने इस योजना से लाभ .भी उठाया।

इस ग्रंथ की उपादेयता को देखते हुए इस को अलग से गुटका के रूप में प्रकाशित करवाने की आवश्यकता महसूस हुई। महाराज जी का संकेत मिलते ही श्री काश्मीरी लाल हंस जी ने श्री सुमित्रा हंस सत्संग भवन हरिद्वार के प्रथम वार्षिक महोत्सव पर इस गुटका को छपवा कर लोकार्पण करने का संकल्प किया। जो भगवान् की कृपा से समय पर पूर्ण होगा ही। इस के लिये हंस परिवार को भूरिशः धन्यवाद है।

हरिॐतत्सत्

भगवान् आदि शंकराचार्य जयन्ती — गुरूपादानुरागी
वैशाख शु. ५, वि. सं २०५७ — **स्वर्ण लाल तुली**
(८ मई सन्, २०००) — नई दिल्ली

प्रकाशक :–
श्री कैलासविद्या प्रकाशन
ऋषिकेश द्वारा श्री कैलासविद्यातीर्थ, नई दिल्ली
(दूरभाष : ३३४७४७५)

प्रसंग : सुमित्रा हंस सत्संग भवन हरिद्वार
प्रथम वार्षिक प्रतिष्ठा महोत्सव
सौजन्य : श्री काश्मीरी लाल हंस एवं परिवार
नई दिल्ली

षष्ठावृत्ति : १००० वि. सं. २०५७ सन् २०००
मूल्य : १० रुप्यकाणि

ग्रन्थप्राप्तिस्थानानि

१. श्रीकैलास आश्रम, कैलास गेट, मुनि की रेती, ऋषिकेश—२४६२०१
२. श्री दशनाम संन्यास आश्रम, भूपतवाला, हरिद्वार—२४६४०१
३. श्री कैलासविद्यातीर्थ (आदिशंकराचार्य स्मारक) ६, भाई वीर सिंह मार्ग, नई दिल्ली-११०००१

मुद्रक:— नाथ प्रिंटर्ज, नई दिल्ली, दूरभाष — ३५५५५८६, ३६१६१७०

ॐ

"श्रीमदभिनवचन्द्रेश्वरो विजयतेतराम्"

वेदान्तरत्नाकर

(सानुवाद)

संसारोरुकरञ्जकाननभुवं चेतोऽम्बुदा गोचरा
बोधार्कं स्वपिधाय सन्ततममी सिञ्चन्ति रागाम्बुभिः।
जीवोऽयं चिरमत्र घोरगहने भ्राम्यन्नहो ताम्यति,
त्राता कोऽस्य पशोर्ऋते पशुपतेः संसारकान्तारतः।।१।।

यह संसार एक अत्यन्त गहन करञ्जवन है, जो चित्तरूपी पृथ्वी में उत्पन्न होता और फलता फूलता है। उस चित्त भूमि में विषयात्मक मेघ ज्ञानसूर्य को ढककर रागरूपी जल बरसाते हैं, जिससे संसार-वन की पुष्टि होती है। यह जीव अनादि काल से इस घोर जंगल में भटकता-भटकता बहुत दुःखी हो रहा है। इस संसार-कानन से जीव की रक्षा परमेश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।।१।।

This world is like an extremely dense forest full of 'thorny' trees. Mind is the land on which it sprouts and grows. The clouds of sensual pleasures nourish it with the water of attachment and cover the sun of wisdom as well. The soul has been wandering in this severe forest for endless time and experiencing immense pain. None else than God can save man from this.(1)

यावद्रागस्य रेखा विलसति हृदये प्रेयसि क्वापि जन्तो-
र्मन्तोस्तावन्न मुक्तः प्रभवति भवितुं कोऽपि संसारहेतोः।
चेतोऽस्वस्थं च तावद्विषयविषरसोल्लासवैषम्यभावाद्
दावात्तस्माद् भवाभादवितुमभिलषन्त्स्यादवावाऽनुरक्तेः।। २।।

जब तक मनुष्य के हृदय में किसी भी प्रिय वस्तुविषयक अनुराग का बिन्दु भी है तब तक सांसारिक दुःखों के मूल कारण अज्ञानरूप अपराध से मुक्त नहीं हो सकता और तभी तक विषयोपभोग की इच्छा के तारतम्य से उसका चित्त अस्थिर रहेगा। इसलिए इस दावानल के सदृश सन्तापजनक संसार से अपनी रक्षा चाहने वाले

पुरुष को सबसे पहले विषयानुराग को दूर करना चाहिये।।२।।

So long as there is even the slightest attachment in the heart of man for anything dear to him, he cannot absolve himself of the curse of ignorance, the root cause of the painful worldly experience and until then his mind shall remain unsteady due to varying degree of desires. Therefore one who wants to protect himself from the world, painfull like the forest fire, he must first get rid of attachment to things. (2)

रागान्धो नैव पश्येदचिरमुपनमद्दुःखदावौघसंघा-
स्तत्रायं को वराकः स्फुरितुमलमहो दीपकाभो विवेकः।
तस्माद्रागोरुपाशे पतनपरवशत्वात्तु पूर्वं यतध्वं
सङ्गत्यागे त्वमीषामयिविबुधवराः शक्यते चेन्नराणाम्।।३।।

जबकि रागान्ध पुरुष शीघ्र प्राप्त होने वाले दुःखरूपी दावानल के समूहों को भी नहीं देख सकता तब उसके चित्त में दीपशिखा के समान अति दुर्बल विवेक को

अवकाश कैसे मिल सकता है? इसलिए हे बुद्धिमान् पुरुषों! इस रागात्मक विशाल जाल में फँसने से पूर्व इन रागान्ध पुरुषों के सङ्गत्याग के लिये प्रयत्न करो।।३।।

When a man blinded by passion is unable to see even a host of forest fires in the form of miseries, how can he perceive the dim light of the lamp of wisdom in his mind? Therefore O'wise man! Strive to give up the company of such blind persons before you get entangled in the vast net of passion. (3)

जानन्नप्येष जन्तुर्विषयपरिणतिं नीरसां भूरिदुःखां
हानं नैषामभीप्सत्यहह परिचितैः प्राणनत्राणतोऽपि।
वाच्यं किं पामराणामधिगतपरमार्थेष्वनेकेषु सत्सु,
सेयं देदीप्यमाना जगति विजयते वैष्णवी मोहमाया।।४।।

यह प्राणी विषयभोग के परिणाम को अत्यन्त फीका और दुःखमय जानता हुआ भी विषयों में इतना अनुरक्त है कि उन्हें भोगते-भोगते प्राण त्याग करने को भी

तैयार रहता है, परन्तु उन्हें छोड़ना नहीं चाहता। यह दशा अपठित मूर्ख पुरुषों की ही नहीं है, प्रत्युत जो शास्त्रज्ञ और अपने को पण्डित मानने वाले हैं वे भी इसी मोह-जाल में फँसे हुए देखे जाते हैं।।४।।

Even though it is clear that the sensual pleasures result only in misery and a feeling of emptiness, the man is so much enamoured by them that he would rather die than leave them. This is true not only of illiterate and foolish persons but also of those who have knowledge of the scriptures and consider themselves learned. (4)

क्वायं हन्ताभिलाषोऽचलदमृतपदे सर्ववैराग्यसाध्ये
क्वेदं चात्यन्तगर्ह्यं विषयविषरसे पानलौल्यं मनस्ते।
कस्मादेवं विरोधे सति समधिगते चेष्टमानं सदा त्वं
मन्दाक्षं मन्द नायास्यधमपथमिहाश्रित्य यायात् क उच्चैः।।५।।

ऐ मेरे चित्त! बड़े खेद का विषय है कि इच्छा तो तुम उस अचल और अमृत पद की रखते हो जो सम्पूर्ण

ब्रह्माण्ड के विषयों में वैराग्य होने से प्राप्तं हो सकता है और प्रवृत्ति तुम्हारी अत्यन्त निन्दनीय विषयरूपी विषमय रस के पीने में हो रही है। इस प्रकार का विरोध जानते हुए भी ऐसी विपरीत चेष्टा करने में तुमको लज्जा नहीं आती? क्या तुम नहीं जानते कि अधर्म मार्ग में चलने से किसी को उच्च स्थान की प्राप्ति नहीं हो सकती।।५।।

O'my Mind! it is a matter of utmost pity that though you wish to attain immortality and unshakable position, which can only be achieved by dispassion towards all objects of this world, but your actions are directed towards drinking the poisonous soup of those very most contemptuous objects. Knowing such contradiction, are you not ashamed of your perverse activity? Don't you know that by going down the slope of falsehood one cannot reach the summit of righteousness. (5)

कामान् वामानवाप्तुं सततमभिलषन्नैति चेतोऽपि तोषं
शोषं कायोऽप्ययासीदहह परितपन् भोगयोग्यत्वमौज्झत्
सोऽयं हन्तान्तराले विलुलित उडुपे वायुवेगेन सिन्धा-
वासीनो यद्वदेवं करुणमभिलपन् वेपते भोगलिप्सुः।।६।।

एक ओर तो चित्त विषयभोग की कामना को नहीं छोड़ता और दूसरी ओर भोग का साधनीभूत शरीर रोगों से कृश होकर भोग करने में असमर्थ हो गया। इस प्रकार द्विविधा में फँसा हुआ भोगी दीनतापूर्वक रोदन करता हुआ ऐसे दुःखी होता है जैसे समुद्र के मध्य भाग में फँसी हुई तथा वायु के वेग से डूबने को तैयार हुई एक छोटी सी नौका में बैठा हुआ कोई पथिक दुःख से कातर हो जाता है।।६।।

On one hand the mind does not give up the desire for sensual pleasures and on the other, the body which is the means to enjoy them has become too weak with ailments to enjoy. Caught up between the two, the man cries pitifully and experiences

such agony as a sailor on a small boat about to be sunk by the strong wind in the midst of the sea. (6)

हा हा हन्तोरुरागो दहति वपुरिदं प्रेयसो विप्रयोगे,
संयोगे त्यागमोत्थामपि विमलदृशं कम्पयँल्लुम्पतीव।
एवं दुःखैकहेतोरयि शुभधिषणाः काम भोगोरुरागा-
न्नागादस्माददम्योत्कटगरलमयात् त्रस्यत स्वास्थ्यहेतोः।।७।।

यह राग केवल दुःख का ही हेतु है, क्योंकि विषय न मिलने पर यह शोक और चिन्तादि उत्पन्न करके शरीर को नष्ट कर देता है और विषय प्राप्त होने पर शास्त्रपर्यालोचन से उत्पन्न हुई विवेक-दृष्टि को लुप्तप्राय कर डालता है। इसलिये हे निर्मल बुद्धियुक्त मुमुक्षु पुरुषों! तुम अपने कल्याण के लिये दुःखमात्र के हेतुभूत अचिकित्स्य और भयंकर विष से भरे हुए इस विषय-भोगासक्तिरूप सर्प से सदा बचते ही रहो।।७।।

The passion results only in misery, as in the event of not getting the desired objects, it

produces sorrow and tension which destroys the health of the body and on acquiring them, it blinds the vision of discrimination born out of the study of scriptures. Therefore o'pure and wise aspirants! For your own good, always beware of the snake of attachment to sensual pleasures whose deadly poison has no anecdote and causes only misery. (7)

यत्पूर्वं त्वमृतेन तुल्यमभवत्प्रेयोऽद्भुतं वस्तु मे,
कस्मात्तत्त्वगतेऽपि दीर्घसमये क्ष्वेडायते सम्प्रति।
स्वप्नोऽयं किमिवेन्द्रजालमथवा मोहोऽथवा मामको,
ज्ञातं भो ननु मायिकस्य जगतो रूपं चलं न स्थिरम्।।८।।

जो वस्तु पहले मुझे अमृत के समान प्रिय थी, वही कुछ ही समय में न जाने विष के समान क्यों प्रतीत होने लगी है। क्या स्वप्न है अथवा इन्द्रजाल है या मेरा ही भ्रम है? नहीं, यह सब कुछ नहीं है। किन्तु इस मायिक संसार का स्वरूप ही चंचल है; स्थिर नहीं

है, यहाँ प्रत्येक वस्तु कुछ काल तक सुख देकर अन्त में नष्ट होने वाली ही है।।८।।

I do not understand why a thing which was earlier dear to me like nectar begins to appear like poison moments later. Is it a dream or magic or my confusion? No, it is not any of these but it is due to the unsteady nature of the illusory world where everything gives pleasure for some period only and remains no more thereafter. (8)

रागो रागत्वयुक्तः सुखयति हृदयं कालमत्राल्पमेव,
क्लिश्नात्यङ्गं तु तत्राप्यथ न सुखवशान्मन्यते क्लेश एषः
द्वेषत्वं प्राप्य सोऽयं सपदि पुनरहो कृन्ततिस्वान्तखण्डं,
हा हा चण्डं तथापि त्यजति न तमहो पापमेतन्मनो मे।।९।।

राग, रागरूप से थोड़े ही समय हृदय को सुखी करता है। परन्तु उस काल में भी शरीर को तो दुःख पहुँचाता ही है; तथापि सुख के संस्कारों के कारण वह क्लेश

प्रतीत नहीं होता है। फिर वह शीघ्र ही द्वेष का रूप धारण करके हृदय का छेदन करता है। ऐसे दुष्ट को समझ कर भी मेरा पापी मन उसका त्याग नहीं करता।।९।।

Attachment associated with passion provides comfort to the heart only for a short time. Even during this period though it does harm the body but the same is not comprehended due to the previous favourable impressions of the mind. However soonafter, when it appears in the form of hatred, it pierces the heart. Even after knowing this to be so wicked, my impure mind does not leave it. (9)

संयोगः प्रेयसो मे मरणमुपगतः कामभूमिं श्मशानं,
कृत्वा रागे चितांग्नौ ज्वलति मम पुरस्ताद्दुदन्तीन्द्रियाणि।
कस्त्राता स्यादमीषां विधिरपि विमुखो रागिणां रक्षणेऽद्य
सद्यो भ्रातर्विवेकाव्रज विरतिवचोभिः समाश्वासयैतान्।।१०।।

विषय के साथ जो संयोग था वह आज मृत्यु को प्राप्त हो गया और अन्तःकरण रूप श्मशान भूमि में रागात्मक चिताग्नि प्रज्वलित होने लगी। यह देखखर इन्द्रियाँ विह्वल होकर रोने लगीं। इनकी रक्षा अब कौन कर सकता है? रागियों की रक्षा करने से तो परमात्मा भी विमुख है। इसलिये भाई विवेक! तुम्हीं शीघ्र आकर वैराग्यपूर्ण वचनों से इनको धैर्य प्रदान करो।।१०।।

The union with the sense objects has met with its end today and in the cremation ground of mind the fire of attachment has flared up. Seeing this the sense organs got restless and started crying. Who can protect them now? Even God is not willing to help persons having passion. Therefore O brother wisdom! Come without delay and buck up the senses with words of dispassion. (10)

पूर्वं यः सुप्त आसीन्मम हृदयबिले रागनामा भुजङ्गः
सोऽयं सद्यो व्यजागर्विषमयः प्रेयसः संप्रयोगे।

हा हा दष्टोऽस्मि दष्टः पतति वपुरिदं घूर्णते मानसं मे
कष्टं भोः सर्वमेतत्सपदि सम भवच्छून्यमन्तर्वियोगे॥११॥

विषय विष से भरा हुआ रागनामक सर्प जो पहले मेरे हृदय रूप बिल में सोया पड़ा था अब विषयप्राप्तिरूप पादाघात से झट जाग पड़ा है। इसके काटने से मेरा शरीर गिरा ही जाता है और चित्त में भी बेचैनी बढ़ने लगी है, परन्तु आश्चर्य है कि विषय का वियोग होते ही ये सब बातें स्वप्न में देखे हुए पदार्थों की तरह भीतर से सारहीन हो गयी हैं॥११॥

The snake of attachment full of deadly poison, which was earlier sleeping in the hole of my heart has suddenly woken up by the impact of the foot of sense objects. Its bite is making my body fall and the mind more and more restless. It is however strange that as soon as the contact with the sense objects ceases, this entire situation turns out to be hollow like a dream. (11)

ज्ञात्वा सत्यं च सारं पुनरपि यदहो चेष्टसेऽसारहेतोः
चेतोऽदः किं तवाभूदहह कथय मे वञ्चितं केन बन्धो।
सिन्धोः सन्तारणे मे व्यवसितमधुना मध्यमानीय तूर्णं
चूर्णं वाञ्छस्यकस्माच्छमविरतिमुखायाः किमेतत्सुनावः।।१२।।

रे चित्त! इस संसार में सत्य और सार वस्तु को जानकर भी तुम असार और मिथ्या वस्तुओं के लिये ही चेष्टा करते हो। तुमको क्या हो गया है? क्या किसी ने तुम्हें ठग लिया है? तुम पहले मुझे संसार-सागर से पार करने के लिये तैयार होकर फिर इस सागर के मध्य में लाकर क्या अकस्मात् ही इस शमदम-वैराग्यादिरूप सुन्दर नौका को चूर्ण करना चाहते हो।।१२।।

O'Mind! What has happened to you that after knowing what is eternal and abiding in this universe you are still striving for false and hollow things. Have you been duped by someone? After preparing myself to cross the worldly sea, do you, in the midst, suddenly want to destroy the beautiful boat of controlled mind, subdued senses and dispassion. (12)

हा हा श्रान्तोऽस्मि चेतस्तव विविधवचोभिः समाश्वासनेऽस्मिन्,
क्षामः कण्ठो मदीयश्चिरभिलपनात्कुण्ठितं प्रज्ञयाऽपि।
त्वं तु स्वीयं न शाठ्यं त्यजसि कथमपि प्रेमतो बोध्यमानं
केनेत्थं पाठितं भो अपि हितवचने नैव विश्वासमेषि।।१३।।

हे चित्त! नाना प्रकार के उपदेशों द्वारा तुम्हें समझाने में मैं तो थक गया हूँ। बहुत समय तक बोलने के कारण मेरा कण्ठ भी थकने लगा है और अब बुद्धि भी कुण्ठित हो गयी है। परन्तु तुम तो प्रेमपूर्वक समझाने से भी किसी प्रकार अपनी शठता नहीं छोड़ते हो। न जाने किसने तुमको ऐसी शिक्षा दी है, जिसके कारण तुम हितकर वचनों में भी विश्वास नहीं करते हो।।१३।।

O'Mind! I am tired of teaching you through a variety of sermons. My throat has begun to choke due to these lengthy lectures and now my intellect has also got blunt. But inspite of my advising you with love, you have in no way given up your foolishness. I don't know by following whose advice you have lost faith in my beneficial words. (13)

कण्ठे कलङ्कवलितो यदि नीलकण्ठो
वकुण्ठवत्समपि गुण्ठति चेत् कलङ्कः।
प्रत्यक्ष एव सकलङ्कतया न शशाङ्कः
शङ्के कलङ्कविकलस्तु न कोऽपि रङ्कः॥१४॥

भगवान् शङ्कर के कण्ठ में विषपान की सूचना देने वाला नील चिह्न है। भगवान् विष्णु के भी वक्षस्थल में श्रीवत्स नामक अङ्क है। चन्द्रमा में तो प्रत्यक्ष ही कलंक दिखायी देता है। इसलिये यह बात निश्चित है कि कलङ्करहित वस्तु संसार में कोई नहीं है॥१४॥

The neck of Lord Shiva bears a blue mark of the poison he drank. Lord Vishnu also has a mark on his chest namely 'Shrivatsa' and the moon's black spot is so clearly visible. There is thus nothing faultless in this world. (14)

यैर्यैरत्राभिषङ्गो जगति कृतचरः पामरैर्भोगलिप्सै-
स्तैस्तैः पश्चादतापि प्रचुरमिहशिरो धूनयद्भिश्चिराय।

साक्षात्कृत्याऽप्यसारं विषयमलमिदं भोक्तुमेवेच्छसि त्वं
हा हा चित्रंत्वदीयं चरितमिदमहो चित्त ते किं ब्रवाणि।।१५।।

जिस-जिस भोगलिप्सु मनुष्य ने इन सांसारिक विषयों में आसक्ति की, उसी-उसी को पीछे सिर पटक-पटक कर रोना पड़ा। हे चित्त! विषयों को इस प्रकार सार रहित जानते हुए भी यदि तुम उनके भोग की इच्छा करते हो तो तुम अति नीच हो। इससे अधिक तुमको और क्या कहा जाय?।।१५।।

Whosoever cultivated attachment with the wordly objects he had to weep bitterly later. O' Mind! Knowing the hollow nature of these objects, if you still desire to have enjoyment from them, you are mean to the extreme. Nothing more can be said about you then. (15)

मोघास्ते ते क्रियौघाः सपदि शममगुः स्वान्तराज्यान्यमूनि
शून्यान्यासन्त्समन्तात्तदपि तदुदिता लेशका ये मनस्थाः।

चेतस्तेऽस्वस्थयन्ति प्रति घटिकमहो कोऽपराधोऽस्य जन्तोः
सन्तोऽत्र स्युःप्रमाणं किमिह बहुविदां वक्तुमर्हाम एते।।१६।।

तूने सुख की प्राप्ति के लिये जिन-जिन क्रियाओं का आरम्भ किया था वे सब विफल रहीं। चित्त के मनोरथ भी सब निष्फल हो गये। परन्तु चित्त में पड़े हुए उनके संस्कार प्रतिक्षण उसे खिन्न किया करते हैं। यह प्राणियों के किस अपराध का फल है? इसमें विद्वत, समुदाय ही प्रमाण है। पण्डितों के सामने हम बहुत क्या क्हहें?।।१६।।

All your efforts to get happiness have proved futile. The hopes entertained in the mind have also been dashed to the ground. However the impressions left by these in the mind distrub it every moment. Which are the sins committd by the livingbeings those are responsible for this agony, only learned would know. We cannot say much before them. (16)

कस्माद्रौषोत्थमन्त्रस्त्वमसि सममिदं न त्वदन्यत्तुकिंचित्
त्वं चानन्दैकसीमा तव लवमुपयान्नन्दितं भूतजातम्।
पश्य त्वं वैभवं स्वं चितिविमलतनुः सर्वभूतेश्वरोऽसि
रोदिष्यद्यापि कस्माद्विभुरभवमृतिः किं तवानाप्तमस्ति।।१७।।

हे जिज्ञासुवर्ग! तुम अपने चित्त में इतने दुःखी क्यों हो? क्योंकि यह सारा संसार तुम्हारा ही स्वरूप है, तुम से भिन्न यह कोई वस्तु नहीं है। निःसीम आनन्द ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम्हारे स्वरूपानन्द के ही एक-एक बिन्दु को लेकर समस्त प्राणी अपने को आनन्दित मान रहे हैं। तुम अपने स्वरूप को अनुभव करो। शुद्ध चैतन्य ही तुम्हारा रूप है। तुम ही सम्पूर्ण प्राणीवर्ग के नियन्ता भी हो। रोते क्यों हो? तुम विभु और जन्म-मरण से रहित हो और आप्तकाम होने के कारण कोई भी वस्तु तुमको अप्राप्त नहीं है।।१७।।

O' Aspirants! Why are you so unhappy in your mind? Know this universe to be your own self. There exists nothing other than you. You are the

embodiment of endless bliss. All the creatures are considering themselves happy because of the drops of bliss drawn form your nature. You just have to experience your real self and find that you are but pure conciousness and also the controller of all creatures. Why do you weep? You are omnipresent, devoid of birth and death and being desireless there is nothing which you don't posses. (17)

शुद्धं शान्तं स्वरूपं तव गगननिभं कोमलं कोमलानां
तेजः पुञ्जोरुतेजो व्यवधिरसमयं सर्वतः सम्प्रसन्नम्।
मुक्त्वा किं वल्गसीहाजरममरमिदं दुःखभूयिष्ठलोके
शोके कस्मान्निमग्नोऽस्ययि सकलजगद् भावयानन्दरूपम्।।१८।।

आकाश के समान शुद्ध तथा शान्त, सबसे कोमल, तेजोमय, सूर्यादिकों का प्रकाशन करने वाला, अनन्त आनन्दमय, अविद्या-क्रामक्रोधादि सकल मल से रहित तथा मृत्यु आदि संसार धर्मों से रहित जो अपना स्वरूप

है उसे छोड़कर इस दुःखमय संसार में क्यों आसक्त हो और किस कारण से शोक में डूबे हुए हो। सम्पूर्ण जगत् को आनन्दमय और आत्मस्वरूप समझ कर सुखपूर्वक विचरो।।१८।।

Your own form is pure and peaceful like the sky, sublest of all, full of light, illuminator of bodies like sun, embodiment of infinite bliss, devoid of all impurities like nescience, desire and anger and free of worldly characteristics like death. Forgetting that why are you having attachment with the painful world and for what reason are you submerged in worry? Considering the whole universe as embodiment of blissful self, move in it with comfort. (18)

सद्यो बुध्यस्व बन्धो हृदि वियति तवाऽऽयादुदग्राभ्रमाला
मोहाख्या श्यामलाऽलादियमहह बलाद्भानुमन्तं विवेकम्।
ज्वालेयं वैद्युतीह स्फुरित सुनिशिता रागनाम्नी विशाला
यावद्वर्षेन्न हालाहलमियमधुना क्रोधकामाद्यनन्तम्।।१९।।

मुमुक्षओं! देखो तुम्हारे हृदयरूपी आकाश में महाभयङ्कर अज्ञाननाम की काली घटा छा गयी है, जिसके कारण से हृदयाकाश में देदीप्यमान विवेकरूप सूर्य लुप्तप्राय हो गया है और राग नाम वाली अत्यन्त तीक्ष्ण विद्युत की ज्वाला चमक रही है। सो जब तक यह काम-क्रोध आदि दुर्जर विष की वर्षा न करे तब तक ही तुम सचेत हो जाओ, क्योंकि हालाहल की वृष्टि हो जाने पर तो फिर जगना असंभव है।।१९।।

O' Aspirants! Behold the fearful dark clouds of ignorance engulfing the sky of your heart as a result of which the sun of discrimination has disappeared and fierce lightning of attachment is striking. You better wake up before the poisonous rain of passion and anger begins; otherwise it would be impossible to get up later. (19)

हा हा पीयूषपूरानधिहृदयनदि ज्ञानवैराग्यरूपान्
संशोष्य क्षारकूपानयि खनसि कुतो मारमुख्यानमुत्र।

पश्यायं मूर्ध्निमृत्युर्ललति कतिपयैरर्दितुं त्वां निमेषैः
सुप्तः किं मूढजन्तो व्रज विमलपथे मङ्गले मा प्रमाद्येः।।२०।।

जिज्ञासुओं! तुम हृदयरूप नदी में परिपूर्ण रूप से वर्तमान ज्ञानवैराग्यादि अमृत के समान शीतल और सुमधुर जल के प्रवाह को सुखाकर उसकी जगह काम-क्रोध आदि खारे जल से भरे हुए कुओं को क्यों खोदते हो? देखो, तुमको शीघ्र ही नष्ट करने के लिए यह मृत्यु तुम्हारे शिर के ऊपर चक्कर लगा रहा है। ऐसे संकटमय समय में भी तुम क्यों निद्राक्रान्त होकर सोये पड़े हो। इसलिये उठो, आलस्य और प्रमाद को छोड़कर कल्याणकारी मोक्षमार्ग के पथिक बनो।।२०।।

O' Seekers of true knowledge! Why do you dig well full of hard water of passion and anger after drying the current of nectar like cold and sweet water flowing in the stream of the heart? Behold! Death is roving over your head to destroy you soon. Why are you sleeping even in such perilous moment? Therefore arise, give up

laziness and carelessness and tread the path of peaceful salvation. (20)

चेतच्चेत्त्वं हि चेतो जडमिव वचनैर्मामकीनैः प्रबोधं
नायास्यद्यापि नूनं तव किमपि महत्पापमुद्भूतमस्ति।
स्वस्तिस्तात् ते व्रजामो वयमथ विपुलां भूमिकां काञ्चिदेतां
यत्र त्वं नो न चेत्यं परमतिविशदं ज्योतिरेकं समन्तात्।। २१।।

हे चित्त! यदि तुम चेतन होते हुए भी जड़ की तरह अभी मेरे वचनों द्वारा नहीं समझोगे तो जान लेना कि तुम्हारा कोई अति उग्र पाप उदय हो रहा है। अस्तु, तुम अपनी इच्छानुकूल रहो, हम भी उस स्थान पर जाते हैं जहाँ तुम तथा कोई अन्य अनात्मस्वरूप दृश्य भी नहीं है, किन्तु एक अत्यन्त निर्मल एवं विश्वव्यापी आत्मस्वरूप प्रकाश विद्यमान है।।२१।।

O' Mind! Though you are a living being yet like a non-living if you don't get wise through my words then know it for certain that some of your most intense sins is going to fructify. In that case let you remain where you want to. I

too shall go to a place where you or other nonself sight is not there but where there is only pure and all pervading light of the Self. (21)

चेतः शृण्वेतदन्ते परमहितमहं श्रावये सङ्ग्रहेण
सौख्यं यास्यस्यवश्यं पृथु सपदि सखे केवलं तद्ग्रहेण।
त्यक्त्वाऽनात्माभिमानानतिविशदधिया वीक्ष्य चात्मानमेकं,
पश्यच्चैवैनमन्तर्बहिरपि च जगत्स्वप्नभावेन जह्याः।। २२।।

हे चित्त! सावधान होकर सुनो, मैं तुमको संक्षेप से परम हितकर वाक्य सुनाता हूँ, जिसका पालन करने से तुम शीघ्र ही परमानन्द को प्राप्त हो जाओगे। वह यह कि तुम देह-गेह आदि में अहंत्व-ममत्वरूप अनात्माभिमानों को त्यागकर तथा निर्मल और सूक्ष्म बुद्धि से एक अद्वितीय आत्मा को साक्षात्कार करके फिर उसी को बाहर-भीतर परिपूर्ण रूप से अनुभव करते हुए इस जगत् को स्वाप्निक पदार्थों के समान समझकर छोड़ दो।।२२।।

O' Mind! Listen with care my brief but extremely beneficial words following which you will attain supreme bliss soon. That is you leave the feeling of I and mine in things other than the Self and with pure and fine intellect realise the One, Secondless Self. Then experiencing fully the Self within and around, negate this world like things of the dream. (22)

चेतः किं खिद्यसे त्वं लिखितमिह पुरा यद्भवेत्तेविधात्रा
भाव्यं तेनैव नूनं शुभमशुभमथो भुङ्क्ष्व भूत्वा प्रसन्नम्।
मायामेतां समस्तामपि विदितवतस्ते न शोकोचितत्वं,
सत्त्वं भूयिष्ठमङ्गीकुरु विहर सदा स्वीयकर्मानुसारम्।।२३।।

चित्त! तुम इतने खिन्न क्यों होते हो। परमात्मा ने जो कुछ शुभ अथवा अशुभ तुम्हारे भाग्य में लिख दिया है वही होगा। उसे तुम प्रसन्न होकर भोगो और इस सकल संसार को मायामय समझने वाले पुरुष को शोक अथवा खेद करना उचित भी नहीं है। इसलिए धैर्य धारणकर

सदा अपने भाग्यानुसार प्राप्त पदार्थ से प्रसन्न रहते हुए विचरण करो।।२३।।

O' Mind! Why do you get so disturbed? Good or bad whatever fate has written for you must happen and which you should accept with pleasure. It is not proper for a person who considers this whole world unreal to feel sorrow or morose. Therefore have forebearance and always feel happy with things brought by destiny. (23)

दुःखान्यायान्ति सद्यो जगति तनुभृतां यान्त्यकस्मात्सुखानि
तेषामन्ते सुखानि प्रकटमुपमन्ते पुनर्दुःखवन्ति।
जायन्ते चाथ मृत्वा मरणमुपलभन्ते जनित्वा तथाऽमी
एवं संसारवृत्तं चलमधिगतवान् खेदमोदौ भजेत्कः।। २४।।

इस संसार में प्रत्येक प्राणी को कभी तो दुःख घेर लेते हैं, कभी अकस्मात् ही वह बड़े सुख का भोक्ता बन जाता है। तदनन्तर फिर हठात् दुःखों से घिरकर वह

अनन्त सुखमय जीवन का अनुभव करता है। इसी प्रकार वह कभी तो जन्म धारण कर मृत्यु को प्राप्त होता है और कभी मरण के पश्चात् पुनः उत्पन्न होता है। इस प्रकार इस संसार को अहर्निश घटीयन्त्र के समान घूमने वाला समझकर कौन बुद्धिमान् सांसारिक पदार्थों में हर्ष अथवा शोक को प्राप्त होगा।।२४।।

Every being in this world is grief stricken at some moment and at another suddenly bursts into joy. Thereafter again he is confronted with sorrow and yet again leads a life full of happiness. Likewise man goes through the cycle of birth and death. Knowing thus that the world is rotating day and night like the wheel of a potter which wise person would get pleased or feel dejected with the worldly objects. (24)

मृत्योर्मर्ति भयं भूदिति रहसि मनो बोधयाम्येतदेकं
मन्येथा मुक्तरेकं यदि सपदि वियायुः समेऽप्याधयस्ते।

सत्यं प्रत्यञ्चमेकं प्रतिभुवनभवं भावयात्मानमन्तस्-
त्यक्त्वा तुच्छाभमन्यद्धितमहितमिवोद्भासमानं समन्तात्।। २५।।

हे चित्त! मैं तुमको एक उपाय बतलाता हूँ। यदि तुम उसे सन्देह और भ्रम छोड़कर स्वीकार कर लोगे तो तुम्हें कभी भी जन्म-मरण का भय व्याप्त नहीं होगा, भले ही सारी आपत्तियाँ तुम पर ही आक्रमण कर दें। वह उपाय यह है कि जो हितकर से प्रतीत होने पर भी वस्तुतः अनर्थकर हैं, ऐसे इन तुच्छ अनात्म पदार्थों का राग छोड़कर तुम सत्य, सर्वव्यापी एवं सबके साक्षीभूत अपने प्रत्यगात्मा का ही, मनन, चिन्तन और ध्यान किया करो।।२५।।

O' Mind! I have a prescription for you. If you accept it without doubt or delusion you will never be afraid of birth and death even when all the troubles surround you. That is to leave attachment to these petty nonself objects, which though apparently look pleasing but in reality are full of harm, reflect, contemp ate and

meditate on the real, Omnipresent Divine Self, the witness of all. (25)

हा गत्वाध्वानमर्द्धं कथमपि च पुरोदृश्यमानेऽपि धाम्नि
चेतः किं मोक्षनाम्नि प्रयदभिवलसे मन्द पश्चादकस्मात्।
भुक्त्वा भोगानिहत्यान्मधुगरलयुतान्नोपमान्व्यस्मरः किं
याह्यूद्ध्र्वं मागमोऽधो न यदि कृतधियां हास्यतां यास्यसीह।।२६।।

हे चित्त! परमार्थ का आधा मार्ग तय कर लेने पर और मोक्षनामक परमधाम के दृष्टिगोचर होने पर भी तुम क्यों पीछे संसार की ओर चलने लगे? क्या मधु और विष मिले हुए अन्न के समान भोगकाल में मधुर और परिणाम में अनिष्ट करने वाले सांसारिक विषयों को अनुभव करके भी उनके स्वरूप को भूल गये? चलो, उन्नति की ओर बढ़ो। अवनति की ओर जाना उचित नहीं है। यदि ऐसा नहीं करोगे तो बुद्धिमान् पुरुषों में तुम्हारा उपहास होगा।।२६।।

O' Mind! After reaching midway on the path to God and having a glimpse of the permanant abode

of the soul namely salvation, why are you looking back towards the world? Have you forgotten the real nature of the worldly objects which like the food mixed with honey and poison tastes sweet but result only in misery. Therefore march towards prosperity as it is not proper to move in the direction of adversity and become a laughing stock of the wise. (26)

एते प्रेयोऽभिलापा अहह कथममी कोमलाङ्गेषु सङ्गा,
रूपं हा पाटलाभं मधु मधुरमिदं चाधरोपान्तलग्नम्।
प्रोत्सृप्ता लोभयन्ते मुखकमल पुटादुत्कटामोदधारा
हाहैवं मोहवन्तो जगति जडधियो ग्रासतां यन्तिमृत्यो:।। २७।।

प्रियतमा के वे मधुर आलाप कैसे आनन्दप्रद थे? कोमल अङ्गों का स्पर्श कैसा लोकोत्तर सुख की वर्षा करने वाला था? गुलाब के फूलों को भी तिरस्कृत करने वाला कैसा रमणीय रूप था? अधरोष्ठ में अतीव मधुर मधु लगा हुआ था तथा मुखकमल में बहने वाली उत्कट गन्ध की धाराएं मन को किस प्रकार लुभाने वाली

थीं? इसी प्रकार मोहजाल में फँसे हुए विषयी पुरुष मृत्यु के मुख में प्रविष्ट हो जाते हैं।।२७।।

How pleasant were the sweet melodies sung by the beloved? What an unearthly rain of comfort poured by the touch of the soft parts of her body? What an attractive beauty was her form which even surpassed the beauty of rose flowers? Not to speak of her lips which were as though coated with the sweetest honey and how mind captivating was the intense fragrance flowing from her face. Such are the thoughts of men who caught in the web of delusion enter the jaws of death. (27)

ज्यायस्येका बुभुक्षा चिरतदनुजनुः सा द्वितीया मुमुक्षा
द्वे अप्येते भगिन्यौ मम च दुहितरावेत्य चेतोऽङ्गणे मे।
वैरायेते तदाद्या करणगणयुतैकाकिनी सा कनिष्ठा
पक्षे याम्यन्तिमायास्तदिह लघुतरं दुर्बलत्वात्प्रियत्वात्।। २८।।

बुभुक्षा और मुमुक्षा नाम की दो बहिनें मेरी पुत्रियाँ हैं,

जिनमें बुभुक्षा बड़ी है और मुमुक्षा छोटी। ये दोनों मेरे चित्तरूप आँगन में आकर आपस में लड़ती हैं, बुभुक्षा इन्द्रियों के सहित होने के कारण बलवती है और मुमुक्षा छोटी तथा अकेली होने के कारण दुर्बल है। इसलिये मैं मुमुक्षा की ही सहायता करूँगा क्योंकि वह दुर्बल और छोटी होने के कारण मुझे प्रिय है।।२८।।

The desire for indulgence and the wish for liberation are my two daughters of which the former is elder. They come to the courtyard of my mind and start querelling. The elder helped by the sense organs is stronger and the younger one is alone and weak. I will therefore help the younger and weak who is so dear to me. (28)

मोहान्धप्रविवेकचक्षुष इमे रज्यन्ति कामाकुला
लोका हा विषयेषु मामकमिदं प्रेयः सदा स्थास्यति।
इत्येवं दृढबद्धमुग्धमतयो हृष्यन्ति कांश्चित्क्षणान्
दह्यन्तेऽरमनल्पशोकदहने हा कस्य को विद्यते।।२९।।

अज्ञान से विवेक रूप नेत्र के अन्धे हो जाने पर काम और रागादि से आक्रान्त पुरुष 'ये हमारे प्रिय पदार्थ सदा रहेंगे' इस भ्रम के वशीभूत होकर विषयों में आसक्त हो जाते हैं, परन्तु कुछ ही क्षण हर्ष मानकर फिर शीघ्र ही प्रबल शोकानल से सन्तप्त होने लगते हैं। इस संसार में कौन किसकी रक्षा कर सकता है।।२९।।

Men whose power of discrimination has been blinded by ignorance and who are dominated by desire, passion etc indulge in enjoyment of sensual objects thinking erroneously that those dear objects will remain with them for ever. Such persons after tasting pleasure for a few moments, soon burn in the intense fire of sorrow. Who can protect whom is this world? (29)

किमिमामयि दीनतामगाः
प्रथमानोरुमहत्त्वभागपि।
समधीहि निजं तु वैभवं
सुखसिन्धुस्त्वमवाप्तसन्नसि।। ३०।।

अरे मुमुक्षुवर्ग! तुम स्वयं प्रकाशमान और निरतिशय महत्त्व सम्पन्न होते हुए भी क्यों इस प्रकार दीनता को प्राप्त हो रहे हो? अपने स्वरूप का स्मरण तो करो। देखो, तुम परम आनन्द के समुद्र और जो कुछ पाना था उसे प्राप्त किये हुए हो।।३०।।

O' Seekers of Salvation! Why are you feeling so helpless when you are self-effulgent and endowed with abundant influence? If you just recaptulate your own nature you will find that you are the ocean of supreme bliss and possess everything worth having. (30)

ममतामभिमुञ्च भिन्नता-
मपि केचित् क्षणमेकमीशते।
तव सोढुमये न संविदः,
किमहन्तामन्येन पश्यसि ।।३१।।

देह-गेह प्रभृति में ममता का त्याग करो। शरीर एवं इन्द्रिय आदि में अहन्त्व बुद्धि रखना भी अन्याय है,

क्योंकि ज्ञानस्वरूप तुम्हारे में भेद सर्वथा असंभव है।।३१।।

Give up the feeling of mine in your body, house property etc. It is not fair to identify yourself with body and its organs. Being embodiment of knowledge, duality is impossible in you and the feeling of I and mine cannot exist without duality. (31)

अवलोकय सर्वमेकया,
मधुमत्त्या समुदारया दृशा।
निजरूपमनाविलं महद्,
भ्रमभातेषु कथं विमुह्यसि।।३२।।

भ्रममात्र से प्रतीत होने वाली अनात्म वस्तुओं में क्यों मोहित हो रहे हो? अपनी अद्वैत तथा आनन्दामृतवर्षिणी उदारदृष्टि द्वारा सबको निर्दोष परब्रह्मरूप में ही देखो।।३२।।

Why are you getting deluded by nonself things which owe their appearance to false imagination. With your broad outlook pouring nectar of bliss,

behold everything as one with faultless Supreme Divine. (32)

सकलं निजरूपमित्यव,
त्यज भेदभ्रममीहसे सुखम्।
यदि भूरिभयं द्वितीयतः,
श्रुतिरप्याह सनातनी तव।। ३३।।

यदि तुम सुख की प्राप्ति चाहते हो तो भ्रमात्मक प्रतीति के विषयभूत द्वैतप्रपञ्च की उपेक्षा करो और सम्पूर्ण चराचरात्मक विश्व को अपना ही स्वरूप समझो, क्योंकि 'उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति' 'मृत्युः सः मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति' इत्यादि सनातनी श्रुतियाँ द्वितीय-दर्शन से ही भय का प्रतिपादन कर रही हैं।।३३।।

If you want to have happiness, ignore the false existence of duality and consider all animate and inanimate universe as manifestation of your ownself. The eternal Vedic Mantras have attributed fear to the vision of duality. (33)

त्यज सङ्गमनात्मभावना-
कृतमङ्गीकुरु सर्वतः शुभाम्।
प्रियतामवलोकयन्नहं
प्रविराजेऽखिलदेहकेष्विति।। ३४।।

'सकल शरीरों में उनकी समस्त अवस्थाओं का प्रकाशन करता हुआ मैं स्वयं साक्षी रूप से विराजमान हूँ' इस निश्चय का अवलम्बन लेकर अनात्मभावना से हुई विषयासक्ति को त्याग दो और सर्वत्र प्रियभाव को स्वीकार करो।।३४।।

Taking refuge in the conviction that I exist as the witness, illuminating all the states of all the bodies, give up attachment to sense objects and cherish a feeling of love everywhere. (34)

विजहीहि दुरात्मसङ्गतिं,
कुरु शीलान्वितचेतसाममूम्।
जय काममुखानिमानरी-
नवधायात्मनि मानसं मुहुः।।३५।।

दुष्ट पुरुषों की सङ्गति का त्याग करके सर्वदा सुशील और आत्मनिष्ठ पुरुषों का ही सङ्ग करो तथा उनकी बताई हुई युक्तियों से मन की आत्माकार वृत्तियों का प्रवाह चलाकर काम-क्रोधादि आन्तरिक शत्रुओं का नाश कर डालो।।३५।।

Leaving the company of wicked persons, always associate with persons of fine character who are established in Divine Self. Also by devising the flow of thoughts towards Self by the methods learnt form the above saints, control the inner enemies like passion, anger etc. (35)

परिभावय भङ्गुरानिमान्
भवभोगानतिदारुणानये।
व्यथसे किमितीह बालिश?
प्रसभं त्रोटय मोहबन्धनम्।।३६।।

अरे छोटे बच्चों के सदृश बेसमझ चित्त! इन सांसारिक विषयों को क्षणभंगुर होने के कारण अत्यन्त दुःख के

हेतु समझो और उनके राग से होने वाले दुःखों की निवृत्ति के लिए उनमें पहले से उत्पन्न हुए मोहनामक बन्धन को काट कर विरक्ति का सम्पादन करो।।३६।।

O' Mind, unwise like little kids! Consider the material objects with their momentary nature as the cause of immeasurable misery. Cut asunder the bondage of delusion with them and cultivate dispassion to get relief from the pain inflicted by them. (36)

अवधीरय वीर तानरीन्,
स्वशरीरं नगरीव यैः कृतम्।
शफरीव विनीरतीरगा,
यदधीरं परिवर्तते मनः।। ३७।।

हे वीर! उन रागद्वेषादि शत्रुओं का बहिष्कार करो जिन्होंने तुम्हारे शरीर को ही अपनी नगरी बना रखा है और जिनके पराधीन होकर तुम्हारा चित्त जलहीन तलैया में पड़ी हुई मछली की तरह तड़फता रहता है।।३७।।

O' Brave! Boycott the enemies like attachment and aversion which have made your body as their home town and under whose slavery your mind has become restless like a fish in a waterless pond. (37)

परिशीलय लीनचेतसा
सततं शास्त्रमिहात्मगोचरम्।
अचिरादनुलाप्स्यसे सुखं,
निजपूर्णत्वमधीत्य तत्त्वतः।। ३८।।

एकाग्रचित्त होकर निरन्तर उपनिषदादि अध्यात्म शास्त्रों का चिन्तन किया करो जिससे तुम अपने आपको पूर्ण ब्रह्म स्वरूप निश्चित करके शीघ्र ही परमानन्द में मग्न हो जाओगे।।३८।।

With a steady intellect always contemplate on the spiritual texts like Upanishadas which would establish your inner self in the supreme God and submerge you, without delay, in indescribable bliss. (38)

तव नैव कदापि कल्मषं,
धिय एषा गुणदोषकल्पना।
करणं यदि चेष्टते शुभे,
त्वशुभे वाऽप्यथ किं ततस्तव।।३९।।

साक्षिस्वरूप तुम्हारे में कर्तृव्य-भोक्तृत्वादि कोई भी दोष नहीं है और 'मैं कर्ता हूँ' 'मैं भोक्ता हूँ' इत्यादि प्रतीति तो साक्षी के उपाधिस्वरूप अन्तःकरण में जमे हुए कर्तृत्व-भोक्तृत्व के कारण हो रही है। तुमसे सर्वथा पृथक् अन्तःकरण यदि किसी शुभ अथवा अशुभ कर्म में प्रवृत्त भी हो फिर भी तुम्हारा किसी प्रकार का हानि-लाभ नहीं होता है।।३९।।

Being of the nature of the witness, none of the faults like doership or enjoyer touch you. Such feelings as I am the doer or I am the enjoyer occur due to impressions sticking on the mind, which is of the nature of attributive adjunct of the witness Divine. If the internal organs which are absolutely different from you perform some

good or bad action, you don't really gain or lose anything. (39)

न खलु त्वमसीह शेमुषी,
न गणस्त्वं करणात्मनामपि।
अपि तु प्रभुरद्भुतः सदाऽ-
स्त्यदसीयः परिभासको भवान्।।४०।।

तुम इस देह में बुद्धि नहीं हो, वैसे ही इन्द्रियों के समुदाय भी तुम नहीं हो, तुम तो उन सबके प्रकाशक, सदा आश्चर्यमय, सर्वसमर्थ, सर्वाधिष्ठान स्वरूप हो।।४०।।

You are neither the intellect nor the outer organs of the body. Infact these are comprehended by the light proivded by your Self who is everwonderful, almighty and the support for all that exists. (40)

अवहेलय भेदकल्पना-
मवलोकस्व समस्तमात्मनि।

सकले च निबोध निष्कलं
सुखचैतन्यमनन्तवैभवम्।। ४१।।

भेद बुद्धि का त्याग करके सम्पूर्ण संसार को अपने आत्मा में ही अधिष्ठित समझो तथा सुखचैतन्यैकरस, दिक्कालवस्तु–परिच्छेदशून्य एवं अविद्या और उसके कार्य से रहित आत्मा को अधिष्ठान रूप से सर्वत्र विद्यमान देखो।।४१।।

Disown the intellect that creates difference, consider whole of the world as if imposed on your inner Self and see everywhere, in the form of support, the same Divine Self, the embodiment of bliss, everflowing conciousness, devoid of the limitation of direction, time, objects and free of Maya (divine illusion) and its effects. (41)

महिमा तव चैष शाश्वतो,
नहि पुण्ये सति वर्द्धते मनाक्।

ह्रसते वृजिने न पूर्ववत्,
प्रथते तत्कृतकृत्यको भवान्।।४२।।

आत्मा की विशेषता यही है कि न तो पुण्यकर्म से उसमें कोई उत्कर्ष होता है और न पापकर्म से किसी अपकर्ष की ही प्राप्ति होती है, किन्तु दोनों दशा में पूर्ववत् स्थित रहता है। इस प्रकार तुम अपने आत्मा की भावना करते हुए एक दिन अवश्य उस आत्मदेव का साक्षात्कार कर लोगे और फिर तुमको कोई कर्तव्य शेष न रहने के कारण सर्वदा परमानन्द का अनुभव होता रहेगा।।४२।।

The divine Self does not receive a boost by a pious action nor does it get depressed by a sinful deed but retains its original poise in both states. Contemplating on the Self in this manner you shall surely realise the Divine in you and having no duties left you would ever remain in blissful state. (42)

प्रतिघस्नमधीष्व शान्तये
ननु शान्तीरनुवेदमुद्गताः।
रहसि प्रणिचिन्तयस्व च,
प्रणवं तत्प्रवणेन चेतसा।।४३।।

अपने चित्त को निदिध्यासन के योग्य बनाने के लिये तुम पृथक्-पृथक् वेदों में आये हुए शान्ति-मन्त्र का प्रतिदिन पाठ करो और निर्जन स्थान में तत्पर होकर प्रणव का अभ्यास करो।।४३।।

In order to make you intellect fit for contemplation, recite daily the peace mantras described in different Vedas. Also practise the japa of 'Om' with devotion in a secluded place. (43)

अयि चिन्तय चेतसा चिरं
क्वचिदम्भोदविनीलगात्रकम्।
सकलेन्दुसमाभवक्त्रकं
मधुरं श्रीवनमालिनं मुदा।।४४।।

अरे साधकों! यदि तुम्हारा चित्त नाम-रूप चिन्तन का ही रसिक है तो तुम निरन्तर मन ही मन श्रीकृष्णचन्द्र की घनश्याम एवं पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली मनोहर मूर्ति का ही चिन्तन किया करो तथा भगवान् के नामों का ही स्मरण करो।।४४।।

O' Aspirants! If your mind is fond of thoughts related to name and form only then always contemplate on the dark complexioned attractive form of Shri Krishna with his face blooming like the full moon and think only of the names of the Lord. (44)

अपि भावय भूधरोपमे,
वृषभे रूढमगूढविग्रहम्।
भसितेन विभूषितं जटा-
स्खलदम्भःपृथुपूरमीश्वरम्।।४५।।

यदि आपका चित्त भगवान् कृष्ण की मनोहर मूर्ति के ध्यान में रुचि नहीं रखता तो भगवान् शङ्कर के सच्चिदानन्द

स्वरूप का ध्यान करो जो पर्वत के समान विशाल बैल पर चढ़े हुए हैं, जिनकी जटाओं से भगवती भागीरथी का प्रवाह बड़े वेग से बह रहा है और जिनका देह भस्म से धवलित हो रहा है।।४५।।

In case your mind does not relish the attractive form of Lord Krishna then meditate on Lord Shiva the embodiment of existence knowledge and bliss, riding on the mountain like huge bull, having goddess Ganga flowing from his hair with great force and his body smeared with ash. (45)

दुधुवुर्गमनेन मेदिनी-
मपि ये रावणतत्सुतादयः।
इह तेऽपि यमेन चर्विताः
क्व वयं कीटपतङ्गसन्निभाः।।४६।।

जिनके चलने से ही पृथ्वी काँपने लगती थी ऐसे शारीरिक शक्ति रखने वाले भी रावण और उसके पुत्र-पौत्रादि अन्त में काल के गाल में चले गये, फिर मच्छर और

मक्खियों के समान हम लोगों की तो बात ही क्या है।।४६।।

When Ravana, his sons and grandsons, physically so powerful that their mere walk shook the earth, were consumed by the death in the end then what can be said about us who in their comparison are like mosquitoes and flies. (46)

तदुदेधि यतस्व सत्वरं
निजनिःश्रेयसहेतवे स्फुटम्।
विगते सति मानवे वपु-
ष्यभिलष्यन्नपि किं करिष्यसि।।४७।।

यदि मृत्यु से बचने का उपाय केवल भगवद्भजन ही है तो उठो और शीघ्र ही अपने कल्याण के साधन का अनुष्ठान करो, क्योंकि सर्व साधनों के करने में समर्थ मनुष्य शरीर का नाश होने पर तुम चाहते हुए भी कुछ नहीं कर सकोगे।।४७।।

If devotion to the Lord is the only way to transcend death then rise and without delay begin practice leading to your emancipation, because after the end of the human body capable of such efforts you will not be able to do anything even if you wish. (47)

नात्यन्तं कुरु सहसा जनैरबोधै-
रासङ्गं व्रज विदतां समीपमाशु।
उत्कर्षैरथ धिषणां निजाममीषा
मीशानैरपवदितुं वचोभिरान्ध्यम्।।४८।।

अज्ञानी पुरुषों के सहवास में ही आयु बिताते रहना उचित नहीं है। शीघ्र ही श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरुओं की सेवा में उपस्थित हो जाओ तथा उनके प्रामाणिक और उपपत्तिपूर्ण वचनों का अवलम्बन लेकर अपने हृदयपटल में फैले हुए मोहतिमिर को दूर करने के लिए अपनी बुद्धि में सामर्थ्य सम्पादन करो।।४८।।

It is not proper to spend your life in the

company of unrealised persons. Therefore, at once, take refuge of the learned and realised preceptors and with the help of their proverbial words sharpen your intellect to dispel the darkness of your heart. (48)

वीताशो भवविमलाशयः समस्मिन्
स्फीताशः स्थिरसुखदे पदे नितान्तम्।
प्रध्यायेरथ विशदं विशोकमेकं,
स्वात्मानं विभुमखिलान्तरात्मभूतम्।।४९।।

सांसारिक विषयों से सुख प्राप्ति की दुराशा छोड़कर शुद्धान्तःकरण हो सर्वात्मभावस्वरूप नित्यनिरतिशयसुखप्रद पद की तीव्र आकाङ्क्षा रखते हुए स्वयंप्रकाश, सकलदूषण रहित, एक, विभु और समस्त प्राणियों के अन्तरात्मस्वरूप अपने प्रत्यगात्मा का निरन्तर ध्यान किया करो।।४९।।

Give up the false hope of pleasure from objects of the world and with a pure mind filled with a strong desire for achieving the state of constant

supreme bliss, always mediate on the Divine, self-effulgent, free of all taints, the one whole, omnipresent and inner Self of all creatures.(49)

पश्येदं जगदखिलं निजात्मनि त्वं
मिथ्याभं मरुकिरणेष्विवोत्थमम्भः।
संरम्भं त्यज तदिह स्वयंप्रकाशो
भासि त्वं ननु बहुधा किमीहसे भोः।।५०।।

तुम इस सकल संसार को, मरुप्रदेश में पड़ी हुई सूर्य की किरणों में दिखाई देने वाले जल के समान, आत्मा में कल्पित समझो और संसार के मिथ्यापदार्थों के भोगने में जो तुम्हारी प्रवृत्ति है उसे त्याग दो। देखो! तुम्हारा स्वरूपभूत चैतन्य स्वयं प्रकाश होने के कारण निरन्तर भासमान रहता है, उसे त्यागकर तुम और क्या चाहते हो?।।५०।।

Look upon all this universe like a miraj in the inner Self and check your tendency to derive pleasure from the imaginary objects. Behold! The

conciosness within is selfeffulgent and ever-shining. What more do you want other than this (blissful state)? (50)

कल्याणं तव विमलं महत्स्वरूपं
ध्यायन्ति स्फुटमनिशं मुनीशमुख्याः।
पुण्याघे त्वयि नतरामपि प्रथेते
माऽहन्तामिह जडतावति प्रसैषीः॥५१॥

तुम्हारा स्वरूपभूत आत्मा लेशमात्र दुःख के संसर्ग से शून्य और निरतिशय आनन्दरूप है। नित्य निरतिशय आनन्द की इच्छा वाले प्राचीन ऋषि-मुनियों ने भी ध्यान और चिन्तन आदि के द्वारा उसी का साक्षात्कार करके अपने को कृतकृत्य माना था। तुम्हारे स्वरूप में पुण्य-पाप का लेप भी नहीं होता, किन्तु इस जड़-शरीर में अहन्त्व का अध्यास होने से उसमें इन सब विरोधी गुणों की प्रतीति होती है। इसलिये सब अनर्थों के मूल इस देहात्मत्वनिश्चय का त्याग करो॥५१॥

Your own divine Self bereft of any trace of misery is supreme bliss by nature. Even the ancient seers got fulfilment only after realisation of the divine Self through meditation and contemplation. It has no attachment with pious deeds or sins but because of the feeling of ownership in the body, these opposites seem to belong to the soul. Therefore leave the concept of being the body which is the root cause of all misery. (51)

वैराग्यं पृथु बिभृहि स्मराखिलं भो
दुःखाढ्यं क्षणविरसं चलं च दृश्यम्।
स्पृश्यन्तामिह विषया यथौषधं स्यान्
नैराश्यं श्रय नितरामुदास्स्व नित्यम्।।५२।।

अरे मुमुक्षुओं! समस्त दृश्य को क्षणभंगुर, विरस और दुःखपूर्ण देखते हुए परवैराग्य को धारण करो। शरीरस्थित के प्रयोजक आहार-विहारादि को भी क्षुधा-पिपासारूप रोग के निवारण के लिये औषधरूप से सेवन करो

और सम्पूर्ण सांसारिक विषयों से सुखप्राप्ति की आशा छोड़कर प्रारब्धवश अनिष्ट प्राप्त होने पर भी उदासीनवृत्ति धारण करो।।५२।।

O' Seekers of Salvation! Knowing all conceivable things as shortlived, devoid of pleasure and full of sorrow, cultivate dispassion. Take only so much food as bare necessary for maintenance of the body, like medicine for curing the disease of hunger and thirst. Give up the hope of getting pleasure from any worldly object and remain unmindful of whatever good or bad comes to you by destiny. (52)

वात्सल्यं यदि सततं प्रवर्तयेथा
भूतानामिह करुणाविशारदः सन्।
निःसङ्गो हृदि नितरामपि स्वशक्त्या,
लोकानामुपकृतये घटस्व विद्वन् ।।५३।।

यदि करुणापूर्ण हृदये के कारण तुम प्राणियों पर दया

रखते हो तो विवेक-वैराग्यादि के बल से सदा निःसङ्ग रहकर लोगों का उपकार करो।।५३।।

If you, out of mercy, possess benovalence for living beings, then render service to them with detatchment sprung from your power of discrimination and dispassion. (53)

नैतस्मादधिकमिहास्ति विद्वदर्हं
विद्याभिर्य उ जनतातमोनिवर्हः।
क्लिशयन्ते ननु जगतां कृते महान्तो
दृष्टान्तोऽमृतकिरणादयस्तवामी।।५४।।

विद्या के द्वारा जनता के हृदयाकाश में फैले हुए अन्धकार को दूर करने से बढ़कर विद्वानों के लिए कोई और कर्तव्य नहीं है। देखो, सूर्य-चन्द्रमा आदि संसार के कारण ही राहु प्रभृतियों से पीड़ित होते हैं।।५४।।

The learned have no duty greater than dispelling, by the light of their knowledge, the darkeness prevailing in the hearts of fellowbeings. Note, the heavenly bodies like the Sun and the Moon

accept suffering when eclipsed by Rahu etc. for the sake of the world only. (54)

भीतश्चेदसि जनतासमागमेभ्यो
रागादेर्लघुमनसि प्रवर्तकेभ्यः।
त्यक्त्वाऽरं जनसमितिं तदा विविक्तं
सेवस्वामलधिषणो जहत्समस्तम्।।५५।।

चित्त में रागद्वेषादि को उत्पन्न करने वाले सङ्ग से यदि तुम डरते हो तो जनसमाज तथा वित्तपुत्रादि के संग का त्याग करके शीघ्र ही निर्मलचित्त हो एकान्त प्रदेश का सेवन करो।।५५।।

If you are afraid of your association with persons responsible for generating the feeling of attachment and aversion in your mind, then at once say goodbye to the society, wealth, sons etc and developing a pure mind reside in a secluded place. (55)

अद्वैतामृतमनिशं श्रुतिप्रपाभ्यो
निःशङ्कं प्रणिपिबतां प्रमोदवन्ति।
शान्तानामथ सततं समाधिभाजां
धन्यानामिह विजने वियन्त्यहानि।।५६।।

वे पुरुष धन्य हैं जो प्रतिदिन निःशङ्क मन से शान्तिपूर्वक श्रुतिरूप प्याऊ से अद्वैतामृत का पान करते हुए ध्यानसमाधि के साधन द्वारा एकान्त देश में आनन्दपूर्वक अपना काल व्यतीत करते हैं।।५६।।

Those persons are worthy of gratitude who spend their time in meditation in a secluded place and who with peaceful mind free of doubts, drink the nectar of nonduality from the fountain of the Vedas. (56)

निर्भीको मतिदृढताबलाद्यदि त्वं
स्वच्छन्दं तदु विहर स्वरूपभूतम्।
निःशेषं परिकलयन्निहाधिरोपां-
दुद्भातं तव किमिदं प्रदूषयेत।।५७।।

यदि तुम चित्त के दृढ़ होने के कारण जनसंग से निर्भय हो तो सम्पूर्ण विश्व को अपना ही स्वरूप देखते हुए स्वतंत्रतापूर्वक यथेच्छ विचरो। अज्ञानजन्य भ्रमप्रतीति से भासने वाला यह मिथ्या जगत् तुम्हारा क्या बिगाड़ सकता है?।।५७।।

It by the dint of your strong mind you have overcome the fear of attachment to persons, then looking upon the whole universe as your own manifestation, roam freely as you wish. What harm can come to you from this false world owing its appearance to only ignorance? (57)

रागःक्वावस्थितःस्यान्मयि विमलतमश्रीनभःसन्निभेऽस्मिन्
या त्वेषा रागरेखा स्फुरितपरितता शक्रकोदण्डतुल्या।
साऽभ्रामे स्वान्तखण्डे विलसतु सुतरां मेघसंसर्गशून्ये
कोद्रिक्तिः कापरिक्तिर्गगन इव मयि स्वान्ततोऽत्यन्तदूरे।।५८।।

आकाश के समान अत्यन्त निर्मल और सर्वदा असंग मुझमें राग किस प्रकार रह सकता है। जो बिजली की

चमक के समान राग की रेखा दिखाई पड़ती है वह मेघरूप अन्तःकरण में ही स्थित है। सो उसका धर्म होने से सदा उसी में रहे। परन्तु मेघ के सम्पर्क से सर्वथा शून्य आकाश के समान अन्तःकरण से सर्वथा असम्बद्ध मुझमें किसी प्रकार का उत्कर्षापकर्ष नहीं हो सकता।।५८।।

Extremely pure and ever detached like the sky how can the Self have any passion? The lightning like line of passion (within me) exists only in the cloud of mind. Being the attribute of the mind let it (the passion) remain there; but the Self, totally unlinked with the mind like the Sky with the cloud, will have no gain or loss from it. (58)

चेष्टन्ते चेदिमानि प्रतिनियतगुणं चक्षुरादीनि नित्यं
चेष्टन्तां काममस्मिन् मयि सकलजगच्चेष्टमानत्वहेतौ।
चेष्टेरन्नो कुतोऽयस्यचलइव चलत्यस्म्ययस्कान्त एव
भिन्नश्चात्यन्तमेभ्यस्तदिह मयि कथं पुण्यपापावलेहः।।५९।।

यदि देह तथा चक्षु आदि इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों की ओर प्रवृत्त होती हैं तो हों। सम्पूर्ण जगत् की चेष्टा के हेतुभूत मुझ आत्मचैतन्य की सन्निधि में जड़वर्ग की चेष्टा होना उपपन्न ही है। क्योंकि वह लोहे के चलने पर भी अचल रहने वाले चुम्बक के समान स्वयं सब प्रकार के विकारों से रहित है। अतः बाह्य देहादिकों से अत्यन्त विलक्षण मुझ आत्मा में पुण्य-पाप का लेप कैसे हो सकता है।।५९।।

If the body and its organs move towards their respective objects let them do so as it is but right that in the vicinity of Self conciousness which moves the whole universe, the inaminate bodies move like iron pieces towards the steady positioned magnet. Therefore how in Self which is entirely different form the external body etc there can be any layer of sin or pious deeds? (59)

योऽयं रागोऽस्मदीयो न खलु स मुहिराणामिवानात्मदृष्ट्या
किन्त्वात्मैवेदमम्भोगतमिह सलिलं फेनमुख्यं यथैवम्।

आत्मन्यध्यस्तभावादिति निपुणधिया पश्यतो रञ्जना मे
क्वात्मप्रेमाणमेनं यदि तु जडधियो रागमाहुस्ततः किम्।। ६०।।

ज्ञानी का राग अज्ञानियों के समान अनात्मदृष्टिमूलक नहीं होता, क्योंकि उसकी दृष्टि में सम्पूर्ण जगत् आत्मा में कल्पित होने के कारण आत्मस्वरूप ही है, जिस प्रकार कि तरंगफेनादि जल में कल्पित होने के कारण जल से अभिन्न दृष्टि से देखने वाले को किसमें राग हो सकता है; और जो ज्ञानी में प्रवृत्ति का प्रयोजक थोड़ा-सा रागाभास दिखायी देता है, वह भी राग नहीं किन्तु आत्मप्रेम ही है। यदि उसी को अविवेकी पुरुष राग कहते हैं तो कहें, इससे ज्ञानी रागी नहीं बन सकता।।६०।।

The attachment possessd by the learned, unlike the ignorant, is not based on nonself dispositon because in their view the whole universe is superimposed on and the same as the Self. For whom then the learned who sees the world, inseparable from Self, like wave and foam from

water, will have passion? The small shadow of passion which is the cause of his activity is not really passion but love of the Self. If men devoid of discrimination call it passion, let them say so, it can hardly label the learned as a passionate person. (60)

नाहं मूर्खो न विद्वान् न च जरठतनुर्नैव बालो युवा वा,
नैव स्त्री नो पुमान्वा सततमथ मयि क्लीबभावोऽपि नास्ति।
किन्त्वेषामेक आत्मा विगतगुणगणो दोषलेशैश्चशून्यो
नित्यानन्दश्चिदात्मा तदिहमयि कुतस्त्यागरागौ भवेताम्।। ६१।।

मैं न तो मूर्ख हूँ और न विद्वान् ही हूँ, वृद्ध, बाल, युवा भी मैं नहीं हूँ, मैं स्त्री, पुरुष या नपुंसक भी नहीं हूँ, क्योंकि ये सब देह, इन्द्रिय तथा बुद्धि के धर्म हैं, मैं इनसे सर्वथा पृथक् हूँ तथा देह, इन्द्रियाँ और बुद्धि इन सबका प्रेरक एवं सब प्रकार के गुणदोष से शून्य सच्चिदानन्द स्वरूप हूँ। तब मुझमें रागद्वेषादि कैसे रह सकते हैं?।।६१।।

I am neither foolish nor learned. I am not aged, child or young. I am also not woman, man or eunuch because all these are the characteristics of the body, organs and intellect from which I am entirely different and of which I am the source of existence. I am free of virtue or vice and am the embodiment of existence, knowledge and bliss. Then how can passion exist in me? (61)

मय्यानन्दैकसिन्धौ कथमवतरतु प्रेप्सयाऽऽनन्दबिन्दु-
र्विन्दुः को रत्नपुञ्जान् भवति मतियुतः काममिच्छुर्वराटम्।
नाटन्तीह त्विमास्ता जलधिमधिजलं नापगा भूरिपूराः
शूराः के तत्र वक्तुं जलनिधिमभिलाषेण युक्तं तथाऽत्र।। ६२।।

केवल, एक, अनन्त, आनन्द के समुद्र मुझमें वैषयिक आनन्द की बूंदों को पाने की इच्छा किस प्रकार हो सकती है? कौन बुद्धिमान् महान् रत्नराशि को पाकर फिर कौड़ी के लिये लालायित होगा? फिर भी यदि प्रारब्ध के कारण मेरे में विषयप्राप्ति प्रतीत हो रही है तो इतने ही से मुझमें काम की कल्पना नहीं की जा

सकती, क्योंकि यद्यपि समुद्र में रात-दिन अनन्तजलपूर्ण नदियों का प्रवेश हो रहा है फिर भी उसे नदी प्रवेश का अभिलाषी कहने में कौन समर्थ है ?।।६२।।

How can I have desire for drops of sensual pleasure when I am exclusively the ocean of infinite bliss? No wise person possessing a huge stock of diamonds would become crazy for a penny. Nevertheless if due to destiny, there appears to be a collection of objects around me, one should not imagine lust in me just as the ocean cannot be accused of inviting inflow of river water into it eventhough day and night rivers with infinite quanity of water go on entering into it. (62)

प्रेयानात्मा समस्मादिति विदितमिदं सर्वलोके च वेदे
सर्वं चाप्येतदात्मा गमितमिदमपि श्रौतवाक्यैः सहस्रैः।
तस्मात्प्रेमास्तु यत्र क्वचिदपि मम स ब्रह्मरूपो न रागो
नागस्तस्मान्मदीये निजविमलतनौ प्रेमणि प्रापणीयम्।।६३।।

समस्त अनात्म पदार्थों की अपेक्षा आत्मा ही परमप्रिय

है, यह सब वेदों में और लोक में भी प्रसिद्ध है। और यह सम्पूर्ण दृश्यमान विश्व आत्मस्वरूप है, यह भी सैकड़ों-सहस्रों वेद वाक्यों से निर्णय हो चुका है। इसलिये जिस किसी भी वस्तु में मेरा प्रेम है वह ब्रह्मस्वरूप ही है, राग नहीं, ऐसे अत्यन्त निर्मल और स्वस्वरूपभूत प्रेम में किसी भी दोष की प्राप्ति नहीं हो सकती।।६३।।

It is said in Vedas and also seen in practice that the Self is dearest of all nonself things. It has been amply testified in thousands of Vedic Mantras that this whole visible world is only manifestation of the Self. Therefore my love for things is not due to passion for them but due to the fact that they are only the forms of the Lord. In such extremely pure love directed towards the Divine Self there cannot be any flaw. (63)

जातं चेतो मदीयं वियदमलमुदैत् पूर्ण इन्दुर्विचार-
स्तत्त्वालोकः समन्ताद् व्यसरदमथो शान्तिरातन्यतेयम्।

पापस्तापो विलीनोऽमृतमिव परितः स्यन्दतेऽमन्दमेतद्
धन्या कल्याणरात्रिः परमवसितवान् वासरोऽसौ प्रपञ्चः।। ६४।।

मेरा चित्तरूपी आकाश निर्मल हो गया, विचाररूप पूर्णचन्द्र का उदय हुआ और चारों ओर तत्त्वज्ञानरूप प्रकाश फैल गया। उसके पश्चात् दुःखप्रद ताप का अभाव होकर परमशान्ति का लाभ हुआ और चारों ओर अनन्त अमृत का प्रवाह बहने लगा। अब प्रपञ्चरूप प्रचण्ड दिन का अवसान होने से सब ओर अत्यन्त तीव्र पुण्यों से प्राप्त होने वाली कल्याणरूपी रात्रि विराजमान है।।६४।।

The sky of my intellect has become clear and the moon of Divine thought has risen, from which light of self knowledge has spread all around causing worrisome heat to disappear. Now perfect peace has been attained and a continuous flow of nectar has started from all directions. The horrifying day of the world phenomenon has ended and the comforting night

achievable through extremely pious deeds prevails everywhere. (64)

लीनः सोऽयं प्रपञ्चो यदधि मम पुराऽभून्महत्कौतुकित्वं
शान्तास्तास्ताः समीहा अनवरतमहोयाभिरुच्चाटितोऽहम्।
उद्वेगाः सर्व एते विलयमुपगताः शीतमासीन्मनो मे
धन्योऽस्म्येकं समन्तात्स्फुरति मम महज्ज्योतिरानन्दभूतम्।। ६५।।

अनेक अनुपपत्ति के कारण ब्रह्मज्ञान होना सर्वथा असम्भव है, वह मेरा महान् आश्चर्य अब लीन हो गया, तथा जिन इच्छाओं की पूर्ति के लिये मैं सर्वथा अस्थिर तथा उद्विग्न रहा करता था वे इच्छाएं और उद्वेग भी सबके सब एक साथ विलीन हो गये और मेरा चित्त परम शान्त हो गया। अब चारों ओर मुझे स्वयं प्रकाश आनन्द ही प्रतीत हो रहा है। इसलिये कृतकृत्य तथा ज्ञातज्ञेय होने के कारण मैं परम धन्य हूँ।।६५।।

The greatest disbelief nutured by me that due to several improbabilities it is imposible to have the knowledge of the Divine now stands

dissolved. Those desires for whose fulfilment I used to remain unsteady and perturbed have all vanished and my mind has become extremely peaceful. Now I see the self effulgent bliss all around and feel fully gratified after accomplishing what was to be accomplished and knowing the knowable. (65)

कामः क्व स्यान्मदीयो जगदखिलमिदं ज्ञातमत्यन्ततुच्छं
कामाभावेतुकोपःकथमिव विभवेत्कारणं सोस्य यस्मात्।
लोभः सत्यत्वमूलो जगति च वितथे सत्यताभ्रान्त्रिरूपा
मोहोभ्रान्तेर्निदानं सकलमिदमगाद्वशोकः शिवोऽहम्।। ६६।।

जगत् को अत्यन्त असार समझ लेने पर मुझे किस विषय में काम हो सकता है? काम का अभाव हो जाने पर क्रोध भी नहीं हो सकता क्योंकि काम्य वस्तु के न रहने पर क्रोध का भी कोई विषय नहीं रहता। लोभ का कारण पदार्थों में सत्यता बुद्धि करना है, वह असत् जगत् में सत्यता पर गम्भीर विचार करने से भ्रमरूप सिद्ध होती है और भ्रम का हेतु अधिष्ठानभूत आत्मा

का अज्ञान है। जब आत्मप्रमा से मोह की निवृत्ति हो गयी तो उसके कारण होने वाली भ्रान्ति भी जाती रही और भ्रान्ति के दूर होने पर उसका कार्य लोभ भी कभी नहीं ठहर सकता। अतः मैं सकलदोषरहित होकर शिवस्वरूप से ही स्थित हूँ।।६६।।

What can be the object of my desire after comprehending the complete hollowness of the world? The end of the lust means the end of anger as well, because in the absence of want there is no basis for anger. The cause of greed is the consideration that the things are real which turns out to be illusory on deep thought. The reason for this illusion is the ignorance about the supporting Self. When the delusion is removed by the knowledge of the Self, the illusion created by it is also removed and with the end of illusion the greed born out of it becomes unsustainable. Therefore I, free of all blemish, stand as the embodiment of Shiva. (66)

शान्ते चेतस्यकस्मादुदगमदमितं ज्योतिरानन्दपूर्णं
तूर्णं मोहान्धकारो व्यगलदथ सुधौघाः समन्तात्स्रवन्ति।
नष्टाःसोकादयोऽमी विकलितमनसो नान्यदालोकयामः
सत्यं चाद्यन्तहीनं प्रविततमतुलं केवलं ब्रह्म भाति।।६७।।

जब चित्त शान्त हुआ तो उसमें आनन्दरूप ज्योति का स्वयं ही आविर्भाव हो गया जिसके कारण अज्ञान रूप अन्धकार की निवृत्ति हो जाने से चारों ओर आनन्दामृत का प्रवाह बहने लगा है तथा शोकमोहादि चोरों का दल व्याकुल होकर नष्ट हो गया है। अब केवल, सत्य, आद्यन्तरहित, सर्वव्यापी, अद्वितीय ब्रह्म ही सर्वत्र प्रतीत हो रहा है। उससे भिन्न दूसरी वस्तु का तो कहीं नाम भी शेष नहीं है।।६७।।

As the mind attained peace, it was automatically filled with the light of bliss dispelling the darkness of ignorance and starting the flow of nectar all around. The worried group of thieves like grief and delusion have vanished. Now I behold

everywhere the beginningless and endless truth which is Omnipresent, Secondless Supreme God. Nothing different from Him exists even for name sake. (67)

ब्रह्मैवोद्ध्वं तथाधः प्रसृतमथ पुरस्ताच्च पश्चादपीदं
ब्रह्मैवोदक्तथाऽवाग्दिशि विदिशि समं व्याप्तमेकं सदेतत्।
नित्यानन्दोरुतेजोभृतविविधवपुर्भ्राजते माययाऽदो
वतोद्धूतं यथाऽम्भो बहुविधवपुषा नान्यदस्तीह तत्त्वम्।। ६८।।

सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म ही ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर सारी दिशा-विदिशाओं में एकरस होकर पूर्ण है। वही ब्रह्म परमार्थ दृष्टि से एक होने पर भी माया के कारण नाना रूपों में प्रतीत होता है। जिस प्रकार एक ही जल वायु के कारण तरङ्ग, फेन, बुद्बुदादि अनेकों आकारों में भासने लगता है।।६८।।

The Supreme God the embodiment of existence knowledge and bliss fills all sides equally as a whole. The same God though one in reality

appears in different forms due to Maya, the illusory power, in the same way as the water associated with wind appears in the form of wave, foam and bubbles etc. (68)

गङ्गौघाधो निमग्ना दृढपृथुलशिला क्लिद्यते नो यथान्त-
र्नैषद्वाप्युच्चलेत्सा सति वहति महास्रोतसि स्वोपरिष्टात्।
तद्वत्संसारपूरे सति महति सदा स्यन्दमानेऽतिघोरे
निर्दुःखा निश्चलाङ्गा श्रुतिसमधिगता पीवरी चिच्छिलाऽहम्।। ६९।।

जिस प्रकार गङ्गा के प्रवाह में डूबी हुई विशाल शिला अपने ऊपर सर्वदा गङ्गा का महाप्रवाह बहते रहने पर भी नहीं भीगती और न अपने स्थान से विचलित ही होती है इसी प्रकार अत्यन्त घोर और महान् संसारनद का प्रवाह निरन्तर अपने ऊपर बहते रहने पर भी वह श्रुतिसिद्ध आत्मनाम की भारी शिला भी दुःखहीन और निश्चलरूप में ही रहती है।।६९।।

As a huge rock ṣubmereged in the Ganges does not get soaked or shifts from its place inspite

of strong currents always crossing over it, in the same manner, the heavy rock namely Self propounded by the Vedas always remains steady and sorrowless inspite of the ever flowing severe and vast world river. (69)

धूयन्तां रागवातैरनिशमिह मनश्चीनवासोध्वजान्ता:
शान्ता:सन्तोऽथवान्ते जहतु कथमपि स्वीयमालौल्यमेते।
के ते गाढं निखातं सकलजडभुवि प्रत्यगात्मानमुच्चैः
स्वस्थं कान्ताभमान्दोलयितुमपि मनाग् वज्रमुद्दण्डदण्डम्।।७०।।

रागरूप वायु के वेग से मनरूप ध्वजा के अन्तिम भाग चाहे रातदिन हिलते रहें अथवा शान्त होकर अन्त में अपनी चपलता को छोड़ दें, तथापि उनके कारण जड़प्रपञ्चरूप भूमि में दृढ़ता से गड़ा हुआ अत्यन्त ऊँचा और कूटस्थ आत्मारूप वज्रदण्ड तनिक भी इधर-उधर नहीं हो सकता।।७०।।

The strong wind of passion may shake the extremes of the mind flag day and night or becoming calm may leave it undistrubed but the

exremely high, unshakable thunderbolt like supporting pole of the divine Self, struck firmly into the ground of this world phenomenon, cannot be displaced by even an inch. (70)

क्षणमहह मनो मे नन्दति स्वं समस्तं
परिकलयदनन्तं ब्रह्मशान्तं नितान्तम्।
क्षणमथ तु दुराशावायुनोद्धूयमानं
विशदहह विभेदं खेदमङ्गीकरोति।।७१।।

कभी तो मेरा मन अपने को अतिशान्त और अनन्त ब्रह्मस्वरूप अनुभव करता हुआ अत्यन्त आनन्दित होता है और कभी दुर्वासनारूप वायु से विचलित होकर द्वैतोन्मुख प्रवृत्ति के कारण खिन्न होने लगता है।।७१।।

Sometimes my mind experiences profound peace and happiness after identifying itself with the infinite supreme God but sometimes, disturbed by the wind of ill impressions born out of the practice of dualism, it becomes restless. (71)

मनः शान्तद्वैतं पिबतु परमानन्दममृतं
भ्रमद्वाऽस्मिन्द्वैते दुरतिगमदुःखानि सहताम्।
अहं त्वस्यास्वस्थामविरतमवस्थामविकलो
विलोके निःशोके निजमहिमनि स्थास्नुरचलन्।।७२।।

मन द्वैत से उपरत होकर चाहे परमानन्दस्वरूप अमृत का पान करे अथवा द्वैतरूप गहन वन में विचरता हुआ दुःसह दुःखों का अनुभव करे। दोनों ही अवस्थाओं में मैं अपने सकलशोकरहित (स्वरूप में) अविकृत और अचल रूप से स्थित रहकर चित्त की अवस्थाओं को देखता रहता हूँ।।७२।।

Whether the mind free of the dualism drinks the nectar of supreme bliss or wandering in the dense forest of dualism experiences unbearable miseries; in both these states I, unchanged and steady, devoid of all sorrow, stand unperturbed as witness to these. (72)

न मे प्रलोपः सति सर्वसंप्लवे
न चोद्भवोऽभूदितरस्य तूदये।

उभावपीमाववलोकयन्नहं
जगद्गतावस्मि सदैकसम्प्रथः।।७३।।

सकल प्रपञ्च का नाश होने पर भी मेरा नाश नहीं होता और उदय होने पर मेरा जन्म नहीं हो सकता, मैं तो जगत् के उत्पत्ति और प्रलय का प्रकाश करता हुआ सदा एकरस ही रहता हूँ।।७३।।

Neither the end of this creation ends me nor its beginning brings me to life. I always remain the same witnessing the creation and destruction of the universe. (73)

जगत्कथं मय्यथ सच्चिदात्मनि
स्थितिं लभतेदमसज्जडात्मकम्।
तथापि भात्येव विभातु किं भवे-
न्नभस्तले चेन्नगरीव विभ्रमात्।।७४।।

सचिदानन्दस्वरूप मुझमें यह असत् और जड़रूप जगत् कैसे स्थित रह सकता है? तथापि आकाश में नगर के

समान यदि इसका भ्रम से मेरे में भान होता है तो हो, इसमें मेरी कोई हानि नहीं है।।७४।।

How can be nonexisting lifeless universe abide in me whose nature is existence knowledge and bliss. Nevertheless if it falsely appears in me like the city seen in the sky, it does no harm to me. (74)

अहं जगत्यत्र न मय्यदस्तथा
वृथा विकल्पस्तु विजृम्भते यथा।
न दाम भोगिन्यथ न स्रजि त्वसा-
वथापि सत्यानृतमेलनं मुधा।।७५।।

यद्यपि न तो मैं इस जगत् में हूँ और न यह जगत् ही मेरे में है, तथापि अविवेक के कारण दोनों में आधारा-धेयभाव प्रतीत होता है। जिस प्रकार न तो सर्प में रज्जु है और न रज्जु में सर्प ही है फिर भी रज्जुतत्त्व के अज्ञान के कारण सत्य और मिथ्या का परस्पर तादात्म्य प्रतीत हो ही जाता है।।७५।।

Even though I don't have any link with this world nor does the world exist in me yet due to lack of discrimination there appears to be a relation of support and the supported between the two, in the same manner as the snake does not exist in the rope nor the rope in snake but due to ignorance of the rope, the real and unreal do get mingled. (75)

मनः स्फुरद् भाति जगत्तयाऽन्यथा
स्वतत्त्वबोधादृत एव केवलम्।
अवाप्य बोधं प्रचकास्ति भासुरं
मनो भवद् ब्रह्म निरामयाभयम्।।७६।।

आत्मतत्त्व के बोध से पूर्व केवल चित्त ही जगद्रूप से स्फुरित होकर अन्यथा प्रतीत हुआ करता है तथा ब्रह्म और आत्मा के एकत्व का साक्षात्कार हो जाने पर वही मन शुद्धसच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म से अभेदरूप से प्रकाशित होने लगता है।।७६।।

Prior to the knowledge of the Self, it is the mind alone that appears in the form of the world but with the realisation of the oneness of the Self with the Supreme God the same mind, devoid of any difference, brightly appears as embodiment of pure existence, knowledge and bliss. (76)

जगत्प्रलोपं जगुरुन्मनस्कतां
मनोऽवशेषं दृढमस्य मूलकम्।
ततो मुमुक्षुः प्रयतेत सागमं
मनः प्रलोपेऽन्यदुपेक्ष्य साधनम् ।।७७।।

क्योंकि चित्त का अभाव ही जगत् का अभाव करने वाला है और चित्त का अस्तित्व ही उसका मूल है, इसलिये मुमुक्षु को अन्य साधनों की उपेक्षा करके सबसे पहले शास्त्रोक्त उपायों से मन का नाश करने के लिये उद्यत होना चाहिए।।७७।।

As the absence of mind means the disappearance of this world and its existence the

world's root, the aspirant ignoring other disciplines should first of all make effort to destroy the mind by means described in the scriptures. (77)

ततः प्रयत्नैः परिशोधनीयता-
मयुष्य पूर्वे बभणुर्महाधियः।
न जातु जातं जगदस्ति सच्चिती-
त्यसंशयं भावनमाहुरामृजाम्।। ७८।।

क्योंकि संसार का कारण चित्त ही है इसीलिए पूर्वाचार्यों ने 'चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नाच्चिकित्स्यताम्' इत्यादि वक्यों द्वारा प्रयत्नपूर्वक चित्तशोधन का ही उपदेश किया है। सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा में असत् जड़, और दुःख रूप जगत् तीनों काल में नहीं हो सकता, ऐसा संशय और विपर्ययशून्य चिन्तन ही चित्त का शोधन करने वाला है।।७८।।

Mind being the root of the world, the earlier teachers through various sermons emphasised

the need to exert all efforts to control it. Doubt and misconcept free, contemplation that the false, lifeless and painful universe has no existence at anytime, is the means to purify the mind. (78)

मनः सरागं मलमूत्रभाजनं
वपुः पवित्रं मनुतेऽमृतादपि।
तदेव वैराग्यविशारदं भव-
द्धिरण्यगर्भं न तृणाय मन्यते।।७९।।

काम एवं रागादि से आक्रान्त चित्त मलमूत्रादि अपवित्र पदार्थों से परिपूर्ण शरीर को अमृत से भी अधिक पवित्र समझता है और वही वैराग्यरूप शुद्धि से युक्त होने पर हिरण्यगर्भ तक को तिनके के समान भी नहीं समझता। अतः पहले जो जगत् की सत्ता में मन की कारणता बतायी जाती है वह अनुपपन्न नहीं है, किन्तु अपने अनुभव से सिद्ध होने के कारण प्रमाणिक ही है।।७९।।

The mind polluted by lust and passion considers the body as pure as nectar, eventhough it is full of foul things like human waste etc. and the same mind possessing the purity of dispassion does not care even for the position enjoyed by the creator Brahma. Therefore what is told about the mind being the root cause of the universe is not a thought in the air but is proved by self experience. (79)

अहो सदानन्दमयः सदोदितो
विभुश्चिदात्माऽप्यज एकलो ध्रुवः।
अनायि सर्वेश्वर एव सन्नसन्-
मनःपिशाचैर्ननु दीनतामिव।।८०।।

यह आत्मा सर्वदा आनन्दमय, नित्य, विभु, स्वयंप्रकाश, अविक्रिय, अद्वितीय, कूटस्थ और सर्वेश्वर होकर भी मन आदि पिशाचों के सम्पर्क से दीन-जैसे बना हुआ है।।८०।।

Even though divine Self is ever full of bliss, permanant, all pervading, self-effulgent, unchangeable, secondless, unshakable and Lord of all, yet it, in association with the demons like mind etc, becomes so very poor and helpless. (80)

अहो अहो अद्भुतमेकमीक्षितं
गजोऽपि वन्यः खलु तन्तुना सितः।
इदं तथा चापरमद्भुतं महद्
घटे भृतः सागर एव केनचित्॥८१॥

बड़े आश्चर्य की बात है वि जंगली हाथी को एक तन्तु से बाँध लिया और इससे भी बढ़कर आश्चर्य यह है कि किसी ने महासागर को घड़े में भर लिया।।८१॥

Is it not strange that a wild elephant has been tied down with a thin thread and stranger still that someone has filled the ocean into a pot ? (81)

मनः प्रचारो विषयेषु मास्म भू-
दितिस्वरूपे मुहुरर्प्यतामिदम्।
विना तथा ध्यानसमाधिसन्ततिं
मनोजयो नेत्यगदन्महर्षयः ॥८२॥

मन की प्रवृत्ति विषयों में न हो, इसलिए उसे बार-बार अपने स्वरूप में स्थित करना चाहिए। परन्तु दीर्घकाल तक ध्यान और समाधि के अभ्यास के बिना स्वरूप में चित्त की स्थिति हो नहीं सकती- यह प्राचीन महर्षिगण सिद्ध कर चुके हैं। अतः इसके लिए ध्यान और समाधि की भी आवश्यकता है॥८२॥

For checking the mind's tendency to go towards sense objects, it should be made to contemplate on the Self. Of course, without the practice of meditation and samadhi for a long time, the mind cannot be eslablished in the Self. This has been amply proved by the early seers. Thus meditation and samadhi (state of Superconciousness) are also essential for this. (82)

मनोजयश्चेन्न कृतो न वासनाः
क्षयं न नीता यदि मूलतोऽखिलाः।
स्थितिस्तथा तत्त्वपदं न लम्भिता
वृथा प्रलापाय तदाऽऽगमा अमी।।८३।।

यदि मन का जय नहीं किया, सम्पूर्ण वासनाओं का समूल नाश नहीं किया और आत्मतत्त्व में चित्त की पूर्ण स्थिति नहीं की, तो श्रवण-मननादि का अनुष्ठान सब व्यर्थ प्रलापमात्र ही है।।८३।।

If the mind has not been controlled and all the ill impressions possessed by it have not been removed alongwith their root and the intellect has not been established fully in the divine Self, then the practice of listening and contemplation on the Divine is all useless talk. (83)

मनः सदा खेलति वासनाऽऽविलं
परांचि नित्यं प्रवणं तथेन्द्रियम्।

अथापि चेद् ब्रह्म वदन्ति निर्भया
अहो जनानां परिशोचनीयता ॥८४॥

वासनाओं से बसा हुआ चित्त सदा विषयों ही में खेल रहा है और इन्द्रियगण सर्वदा अनात्मवस्तु में ही तत्पर रहती हैं फिर भी निर्भय होकर ब्रह्मोपदेश कर रहे हैं- हाय! जीवों की कैसी शोचनीय दशा है॥८४॥

What a pity that persons whose minds are full of ill impressions and who are always playing about the sense objects and whose sense organs are ever eager to grasp non-self things, are fearlessely lecturing on supreme God! Is not it a worrisome state of the Jivas? (84)

ततः परागर्थपराक्षवर्गकं
निरुद्ध्य यत्नेन मुमुक्षरादितः।
मंनः समाधाय च मानतो मिते
विलोकयेत्स्वं गुरुदिष्टया दिशा॥८५॥

आत्मबोध और मनोनिरोध दोनों ही आवश्यक होने के

कारण पहले मुमुक्षु अनात्मा की ओर जाने वाली इन्द्रियों को यत्नपूर्वक रोककर शास्त्र प्रमाण से निश्चित वस्तु में चित्त को निरुद्ध करे और गुरुपदिष्ट मार्ग से आत्मा का साक्षात्कार करे।।८५।।

Self realisation and control of mind both being necessary, the aspirant with full effort should first control the outgoing sense organs and then fix the intellect on the definite substance testified by the scriptures and then realise the Self through the technique told by the preceptor. (85)

मनोविलासानवलोकयन्विभु-
र्विराजतेऽयं हृदि सङ्गवर्जितः।
न दुःखदीनो न च सौख्यवर्धितो
भवत्ययं चित्तदशाः प्रकाशयन्।।८६।।

सर्वव्यापी परमात्मा मनोवृत्तियों का साक्षी बनकर हृदय में विराजमान है और चित्त के सुख-दुःखों को प्रकाशित

करते हुए भी असङ्ग होने के कारण उसके दुःख से दुःखी और सुख से सुखी नहीं होता, किन्तु सदा एकरस ही रहता है।।८६।।

All pervading God resides in the heart, witnessing the modifications of the mind alongwith its experience of pain and pleasure, but It always keeps poise without association with grief or happiness of the mind because of its inherent detachment. (86)

स्वान्ते विभान्तं प्रतिबोधमन्त-
र्ध्वान्तं नितान्तं प्रविदारयन्तम्।
शान्तं न विन्देत जनो यदीमं
नान्तं व्रजेज्जन्मजरामृतीनाम्।।८७।।

अपने अन्तःकरण में उसकी वृत्तियों के साक्षीरूप से प्रकाशमान और हृदय के अन्धकार को समूल नष्ट करने में समर्थ शान्त-स्वरूप परमात्मा को जब तक पुरुष प्राप्त नहीं करेगा तब तक वह जन्म-जरा मृत्युस्वरूप अनर्थमय संसार से मुक्त नहीं हो सकेगा।।८७।।

So long as man does not realise God, the embodiment of peace, the witness of mind and its modifications and capable of destroying darkness of the heart, it would not be able to free itself from miseries of the world like birth, old age and death. (87)

आत्मा च नामाथ च लम्भनीयो
जज्ञुर्बुधा विप्रतिषिद्धमेतत्।
तस्मादसौ लब्धतयैव लभ्यः
कण्ठस्थचामीकरसंनिकाशः।।८८।।

यद्यपि नित्यप्राप्त होने के कारण आत्मा को प्राप्तव्य कहना सर्वथा विरुद्ध है तथापि 'आत्मा प्राप्तव्यः' इसका अर्थ है कि 'प्राप्तत्वेन रूपेणैवात्मा निश्चेतव्यः' अर्थात् आत्मा नित्यप्राप्त है- इस प्रकार ही निश्चय करना, जिस प्रकार की गले में पड़े हुए हार की विस्मृति होने पर 'हार मेरे कण्ठ में है' इस प्रकार निश्चय होना ही उसकी प्राप्ति है।।८८।।

Eventhough it is a total contradiction to term the everavailable Self as acquirable, yet the usage of the word indicates the finding of the found like the forgotten necklace round the neck. (88)

अमुं निधिं गाढमहो जनानां
निगूढमन्तर्हृदि दीप्यमानम्।
न जानते मोहशिलाऽऽवृतत्वा-
दमी ततो दीनदशामवापुः॥८९॥

मनुष्यों के हृदय में गंभीर स्थल में छिपे हुए उस देदीप्यमान आत्मनिधि को, अज्ञान-शिला से आवृत होने के कारण, न जानकर ही सब लोग दुःख का अनुभव कर रहे हैं॥८९॥

People are experiencing grief by not knowing the treasure of the Self hidden in the heart due to the cover of ignorance over it. (89)

विद्यादतस्तूर्णमिमं विवित्सु-
र्व्यपावधिं मोदमनन्तलोके।
त्यक्त्वेतरत्कर्म वृथा वितानं
विधूय कामान् मृगतृष्णिकाभान्।।९०।।

निरवधि सुख को प्राप्त करने की इच्छा वाला पुरुष व्यर्थ आडम्बर वाले कर्मों को और उनसे प्राप्त होने वाले मरुमरीचिका के जल सदृश स्वर्गादि विषयों को छोड़कर अपनी हृदयकन्दरा में सर्वदा भासमान परमात्मा का साक्षात्कार करे। तभी संसार का बीजभूत अज्ञान नष्ट होगा और तभी इसको अचल पद की प्राप्ति होगी।।९०।।

An aspirant of Divine bliss should leave the hypocritic rituals leading to mirage of heavenly pleasure etc and realise the ever effulgent God present in the cave of the heart. Only then the seed of this world mamely ignorance will be destroyed and he (aspirant), will adorn his unshakable position. (90)

अयमहमखिलेश्वरश्चिदात्मा
किमिह मयाऽनुपलब्धमस्ति लोके।
सति जडजगतां मयि प्रचेष्टा
तदहमहो जगदन्तरात्मभूतः।। ९१ ।।

मैं सारे जगत् के स्वामी चिदात्मा से अभिन्न हूँ; अतः संसार में मुझे कौन वस्तु अप्राप्त हो सकती है? सम्पूर्ण जड़ जगत् की चेष्टा मेरी ही सत्ता से होती है, इसलिए जगत् का अन्तर्यामी और प्रेरक मैं ही हूँ।।९१।।

I am not different from the Lord of this whole universe. Therefore there is nothing unavailable to me. The Whole lifeless world moves because of my presence and so I am the indweller and life line of this world. (91)

जगदिदमखिलं मयि प्रभातं
न मदतिरिक्तमतोऽण्वपि प्रलोके।
व्यपगतमभवद् भयं समस्तं
भयमितरभ्रमभासितं यदूचुः।। ९२ ।।

यह सम्पूर्ण जगत् अधिष्ठानभूत मेरे में ही प्रतीत होता है। इसलिए मुझसे भिन्न संसार में अणुमात्र भी नहीं है। अतः द्वैतभ्रम से प्राप्त हुआ सारा भय आज नष्ट हो गया है।।९२।।

This whole world appears in me, the substratum and there is not even an atom devoid of me. Therefore the fear born out of the false dualism has vanished today. (92)

सुखमनन्तमिदं जगतामहं
मयि तु दुःखलवोऽपि कथं भवेत्।
न खलु लोकविलोकनके रवा-
वनुपधानतमः समदर्शकि।।९३।।

जब मैं समस्त जगत् को आनन्दित करने वाला और अनन्त सुखस्वरूप हूँ तब मेरे में दुःख का बिन्दु भी कैसे संभव हो सकता है। अपने प्रकाश से सारे संसार को प्रकाशित करने वाले सूर्य में क्या कभी किसी ने वास्तविक अन्धकार देखा है?।।९३।।

When I, the embodiment of infinite bliss, am the giver of pleasure to the whole world, how even a dot of pain is possible in me? Has anyone seen real darkness in the sun which provides light to the whole universe? (93)

कामपाशपरिणद्धमानसो
जन्तुरेष जगतीह जायते।
शारदाभ्रपरिशुद्धचेतसो
ब्रह्मणश्च मम जन्म कीदृशम्।। ९४।।

कामरूपी, पाश में चित्त के बँधने पर ही जीव को संसार में जन्म लेना पड़ता है। शरत्कालीन मेघों के समान निर्मलचित्त होने के कारण ब्रह्मस्वरूप मेरा जन्म नहीं हो सकता।।९४।।

Only a 'Jiva' caught in the net of lust has to get birth in this world. Whereas for me possessing a pure intellect like the clear sky of winter and having the same nature as Supreme God, there is no birth. (94)

या बिभर्ति जगदेतदद्भुतं
वासना वितथभोगभासुरा।
जीवलोकमृगवागुराधुना
सावबोधबलतो व्यशीर्यत।। ९५।।

जो मिथ्या विषयों के द्वारा पुष्ट होने वाली और जीवगण रूप मृगों को बाँधने के लिये जाल के सामन तथा इस जगत् की स्थिति में प्रधान कारण हैं, वे वासनाएं भी आत्मज्ञान के उदय होने से नष्ट हो गयीं।। ९५।।

The ill impressions fattened by the false sense objects, acting like a net to bind the animals like 'Jivas' and which constitute the main cause of the appearance of this universe, have been destroyed by the knowledge of the Self. (95)

वीतशोकमतिलोमेकक्कं
ज्योतिरेव जगदन्तरीक्ष्यते।
न स्म भाति न च भाति वस्तुतो
भास्यतीदमिह विश्वडम्बरम्।। ९६।।

शोक-मोहादि समस्त संसार धर्मों से रहित, एक, अलौकिक, चैतन्यज्योति ही जगत् के अन्दर अनुस्यूत दिखायी देती है और इसी से जगदाडम्बर का त्रैकालिक अत्यन्ताभाव हो गया है।।९६।।

The light of transcendental consciousness devoid of sorrow and delusion etc of the world is pervading this universe and due to this the false drama of the world has ceased completely forever. (96)

उदगादयं प्रचुरबोधमयो
रविरस्तमायदखिलं च तमः।
मिहिका व्यलास्त, वितथप्रतिभा
व्यशदायताथ चिदनन्तनभः।। ९७।।

संशय-विपर्ययशून्य सुदृढ़ बोधरूप सूर्य का उदय होने से अज्ञान रूप अन्धकार नष्ट हो गया और मिथ्या-प्रतीति रूप कुहरा दूर होकर चैतन्य रूप आकाश अत्यन्त निर्मल हो गया।।९७।।

With the rising of bright sun of knowledge free of doubts and contradictions, the darkness of ignorance has been dispelled and the fog of false comprehension has disappeared leaving the sky of conciousness absolutely clear. (97)

न जुगुप्सतेऽथ हृदयं तु मना-
गभिनन्दतीह न च किञ्चिदपि।
प्रतिपित्सते न किमपि स्वपरं
रमतेऽनपेक्षमपसीमसुखे।। ९८।।

मेरा हृदय न तो किसी पदार्थ से घृणा करता है न किसी में प्रेम रखता है तथा आत्मा वा अनात्मा किसी भी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा नहीं रखता, किन्तु सर्वदा निरवधिक आनन्द ही में मग्न रहता है।।९८।।

My heart neither hates nor loves anything and has no desire to acquire things of the world or even transcendental; instead it always overflows with endles bliss. (98)

प्रकटत्वमापदियमन्तरहो
परितृप्तिरन्तविधुराऽविषया।
अविलोलमेतदिह हन्त मनो
लवणस्य भित्तमिव लीनमभूत्।।९९।।

अनन्त तथा निर्विषय आन्तर शान्ति का आविर्भाव हुआ और यह मन निश्चल होकर जल में लवणपिण्ड के समान उसी में लीन हो गया।।९९।।

With the dawn of infinte indepenent inner peace, the mind has become steady and has merged in it like a salt stone in water. (99)

प्रपञ्चपरिचर्चया विगतमेव दुर्धर्षया
व्यभासि परहर्षयाऽमितसुधाऽभिसंवर्षया।
गभीरमवगाढया किमपि तत्त्वमाबाढया
विलीय मिलितं धिया सपदि तत्र संपित्सया।।१००।।

प्रपञ्च के विषय में जो अत्यन्त दुर्दम्य सङ्कल्प थे वे शान्त हो गये, अनन्त हर्ष प्रदान करने वाली परमामृत की वृष्टि का आरम्भ हो गया और किसी अकथनीय

तत्त्व में दृढ़ता के साथ जटिल होकर उसी में मिलने की इच्छा से बुद्धि भी विलीन होकर उसी के साथ एकरस हो गयी।।१००।।

The extremely hard assumptions about the world phenomenon have ceased and the infinitely pleasing rain of nectar has started. The intellect bound strongly with an indescribable substance, wishing to mingle with it, has become one with the same, losing its own identity. (100)

परिहरन्नखिलं लभते पुमा-
नभिलषन्न च विन्दति किञ्चन।
यदमृतत्वमवादिषुरागमा-
स्त्यजनतः सकलस्य समस्तताम्।।१०१।।

इच्छा करने से पुरुष को कुछ भी नहीं मिलता और त्याग करने से सब कुछ प्राप्त हो जाता है, क्योंकि दुर्लभ सर्वात्मभावरूप मोक्षनामक अमृतत्व भी सबके

त्याग से ही प्राप्त होता है। इसमें 'त्यागेनैके अमृत-त्वमानशुः' यह शास्त्र प्रमाण है।।१०१।।

Man gets nothing by having desires but achieves everything by renunciation because extremely rare nectar namely realisation of Self in everything is also achievable by it. This is borne by the words in scripture, "Divine nectar can only be obtained through renunciation". (101)

बहुशः परिचिन्तिता श्रुति-
र्ननुगीता न न वा विचारिता।
मनसे तु तदेव रोचते
यदमुत्रानिशवर्ज्यमीरितम्।।१०२।।

श्रुति का भी बहुत मनन किया तथा गीता के विचार में भी कोई कमी नहीं रक्खी, तो भी मन को तो उन्हीं पदार्थों में रुचि है जिनका कि शास्त्रों में निषेध है।।१०२।।

I had deep contemplation on the Vedas and spared no pains to study Bhagawadgita

thoroughly. Even then the mind is attracted towards the same objects that are forbidden by the scriptures. (102)

मनः क्षणं धावति चन्द्रमण्डलं
क्षणं विशत्येतदहो रसातलम्।
क्षणेन पर्यट्य दिगन्तचक्रकं
द्रुतुं समक्ष्णोति समग्रभूतलम्।।१०३।।

कभी तो मन स्वर्ग प्राप्ति के लिए पुण्यकर्मों की ओर दौड़ता है और कभी नरक में डालने वाले पापों की ओर जाता है तथा कभी मनुष्य लोक में ही उन्नति करने के लिये साधारण कर्म करने लगता है। इस प्रकार थोड़े ही समय में यह सारे ब्रह्माण्ड में फैल जाता है।।१०३।।

Sometimes the mind runs towards virtuous deeds leading to heaven and sometimes goes towards sins leading to hell and sometimes in order to have prosperity in this world starts doing ordinary jobs. Like this in short time it treads over the whole universe. (103)

अदो मनो जय्यमगासिषुर्बुधा
मुधा प्रलापानितरान्न किं जगुः।
वियद् गदाभिः परिचूर्ण्य सर्वतो
महोदधौ क्षेप्यमहो जना इति।।१०४।।

पूर्व ऋषियों ने जो चञ्चल चित्त को भी जय होने के योग्य कहा है तो इसी प्रकार के 'गदाओं से आकाश का चूरा करके समुद्र में फेंक दो' किन्हीं अन्य व्यर्थ प्रलापों का उल्लेख क्यों नहीं किया?।।१०४।।

What the ancient seers told about the mind that it is conquerable appears to me as hypothetical as asking to make powder of the sky by mace and throw it into the sea. (In otherwords it is extremely difficult to control the mind). (104)

किमत्र चित्रं यदि वासमग्रके
सति प्रयत्ने पुरुषस्य दुर्दमे।
प्रसत्तिमासेदुषि सर्वयन्तरि
प्रभौ नभः किं कत्तमद्दुरासदम्।।१०५।।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि यदि पुरुष पूरी तरह प्रबल प्रयत्न करे तो परमात्मा को प्रसन्न करके चित्त को जय कर सकता है, क्योंकि परमेश्वर की सहायता से आकाश को चूर्णित करना क्या; इससे भी दुष्कर कार्य सरलतासे किये जा सकते हैं।।१०५।।

No wonder if man tries hard he can conquer the mind by the grace of God with whose help actions even more difficult than powdering the sky can easily be performed. (105)

ततो न हेया धृतिरुत्तमा मना-
गनादिदुर्वासनयाऽपि दूषितम्।
मनः पुरा शुध्यति पुंस्प्रयत्नतो
निदर्शनं स्पर्शमयश्चं पश्यत।।१०६।।

इसलिये पुरुष को चाहिए कि धैर्य का त्याग न करे, क्योंकि अनादि दुर्वासनाओं से दूषित मन भी पुरुष प्रयत्न से शुद्ध हो सकता है। इसमें लौह और स्पर्शमणि का दृष्टान्त प्रसिद्ध है।।१०६।।

In the circumstances, man should never give up forebearance because the mind soiled by age-old ill impressions can be purified by human effort. The saying regarding iron and the touchstone is famous in this regard. (106)

अहो दुराशारशनाभिपाशितो-
ऽस्म्यहं सदा मर्कटवत्प्रनर्तितः।
त्वया विभो हे जगदीश सम्प्रति
प्रमुञ्च मां त्वा प्रणमामि भूरिशः॥१०७॥

हे विभो! हे जगदीश्वर! तुमने दुराशारूप रस्सी में बाँधकर बन्दर के समान मुझसे तरह-तरह के पुण्यपापों का अनुष्ठान रूप नृत्य कराया है। अब मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे इस बन्धन से मुक्त कर दो॥१०७॥

O' God Infinite! Because of my virtuous and sinful deeds you made me dance like a monkey by tying me with the rope of false hope. Now my only prayer is that you free me from this bondage. (107)

पतिः पशूनामसि वेदघोषितः
कुतः पशुं मामपि नैव पासि भोः।
न शक्यते चेत्पतिभावमुत्सृजे-
रहं पशुत्वं विजहामि ते विभो।।१०८।।

भगवन्! आपको वेदों में पशुपति कहा है, जिसका अर्थ है कि पशु का पालन करने वाला, तो फिर आप पशुरूप मेरी रक्षा क्यों नहीं करते? यदि मेरी रक्षा नहीं कर सकते तो अपने पशुपति नाम को त्याग दो और मैं भी आपके प्रति अपना पशुनाम त्यागता हूँ।।१०८।।

O' God! You have been described as Lord of the animals which means the rearer of them. Then why don't you protect me, the animal? If you cannot protect me them kindly give up your 'Pashupati' name and I also change my animal name. (108)

अलं फलेनेह सुपर्वसम्पदा
कृतं विरिञ्चेः पदवीक्षयाऽपि मे।

न विष्णुधिष्ण्यं न च भर्गभूमिका-
मथाद्रिये ब्रह्म भवामि निर्भयम्।।१०९।।

देवलोक स्वर्ग की प्राप्ति से मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है, ब्रह्मलोक की भी मैं इच्छा नहीं रखता, विष्णुलोक तथा शिवलोक में भी मेरी श्रद्धा नहीं है। परन्तु 'निर्भय ब्रह्मपद मुझे प्राप्त हो' यही मेरी सदा कामना रहती है।।१०९।।

I do not aim to achieve heaven of the gods nor 'Brahmaloka' the abode of Lord Brahma. I have no faith in either Vishnuloka or Shivaloka. What I always long to achieve is the fearless state of the Supreme God.(109)

ये स्युर्गुणाः कतिचिदत्र गुरोरिमे स्यु-
र्दोषा ममैव सकला न तु ते गुरूणाम्।
अम्भोदमुक्तभुजगास्यगते विषत्वं-
नीरे यदेतदुरगस्य न वारिदस्य।।१।।

ॐ शान्तिः! ॐ शान्तिः!! ॐ शान्तिः!!!

।।इति श्रीवेदान्तरत्नाकरः (सानुवादः) समाप्तः।।

वैराग्यपंचकम्

शिलं किमनलं भवेदनलमौदरं बाधितुम्।
पयः प्रसृतिपूरकं किमु न धारकं सारसम्।।
अयत्नमलमल्पकं पथि पटच्चरं कच्चरम्।
भजन्ति विबुधा मुधा अहह कुक्षितः कुक्षितः।।१।।

दुरीश्वरद्वारबहिर्वितर्दिकादुरासिकायैरचितोऽयमंजलिः।।
यदंजनाभं निरपायमस्ति नो धनंजयस्यन्दनभूषणं धनम्।।२।।

काचाय नीचं कमनीयवाचा मोचाफलस्वादमुचा न याचे।।
दयाकुचेले धनदत्कुचेले स्थिते कुचेले श्रितमाकुचेले।।३।।

क्षोणोकोणशतांशपालनखलद्दुर्वारगर्वानल-
क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्रचाटुरचनां धन्यां न मन्यामहे।
देवं सेवितुमेव निश्चिनुमहे योऽसौ दयालुः पुरा
धानामुष्टिमुचे कुचेलमुनये धत्ते स्म वित्तेशताम्।।४।।

शरीरपतनावधि प्रभुनिषेवणापादना-
दबिन्धनधनंजयप्रशमदं धनं दन्धनम्।।
धनंजयविवर्धनं धनमुदूढगोवर्धनं
सुसाधनामबाधनं सुमनसां समाराधनम्।।५।।